महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड : MBA - 001

प्रथम सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : MBA – 402

पाठ्यचर्या का शीर्षक : संगठनात्मक व्यवहार

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

प्रथम सेमेस्टर – एमबीए 402 संगठनात्मक व्यवहार

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
समकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय,म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक : एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

संपादक मंडल

डॉ. रवीन्द्र टी. बोरकर
सह प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक,
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

डॉ. ए. के. जे. मंसूरी
जी. एस.कॉलेज ऑफ कॉमर्स, वर्धा

डॉ. राम ओ. पंचारिया
बी.डी. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, सेवाग्राम

श्री अनुभव नाथ त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

प्रकाशक :
कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्टः हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन
मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक : एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

इकाई लेखन
डॉ. पूजा वालिया मान
अधिष्ठाता, फैकल्टी ऑफ मैनेजमेंट
समालखा ग्रुप ऑफ इंस्टिटयूंसस
समालखा (पानीपत), हरयाणा

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग
श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

श्री. महेंद्र प्रसाद
सहायक संपादक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of1997)

विषय कोड: MS 402 **क्रेडिट्स:** 2 क्रेडिट

विषय का नाम: संगठनात्मक व्यवहार (Organisational Behaviour)

पाठ्यक्रम के उद्देश्य:

- संगठन के अंदर व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार की समझ को विकसित करना ।
- संगठन के अंदर और बाहर दोनों ओर व्यक्तियों में पारस्परिक सम्बन्ध और समूह प्रक्रिया को बढ़ाना ।
- संगठनात्मक प्रक्रियाओं के प्रबंधन के लिए सैद्धांतिक और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि ।।

मूल्यांकन के मानदंड:

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सत्रीय कार्य : 30 %

पाठ्यक्रम सामग्री:

इकाई - I: संगठनात्मक व्यवहार का परिचय (Introduction to Organisational Behaviour)

- संगठनात्मक व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Organisational Behaviour)
- संगठनात्मक व्यवहार की विशेषताएँ (Characteristics of Organisational Behaviour)
- संगठनात्मक व्यवहार के मुख्य अंग (Main Components of Organisational Behaviour)
- संगठनात्मक व्यवहार की मूल धारणाएँ (Basic concepts of organisational behaviour)
- व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Personality)
- व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ एवं निर्धारक तत्व(Main Features and Determinants of Personality)

इकाई - II: संगठनात्मक संदर्भ : डिज़ाइन और संस्कृति (Organizational Context: Design and Culture)

- संगठन के सिद्धांत (The organizational Theory)
- आधुनिक संगठनात्मक डिजाइन (Modern Organizational Designs)
- संगठनात्मक संस्कृति प्रसंग (The Organizational Culture Context)
- संस्कृति बनाना और बनाए रखना (Creating and Maintaining a Culture)
- संगठनात्मक परिवर्तन (Organizational Change

इकाई - III: सीखना, मनोवृत्ति एवं धारणा (Learning, Attitude and Perception)

- सीखना तथा शिक्षार्थियों के प्रकार (Learning and Types of learners)

- सीखने की प्रक्रिया एवं सीखने के सिद्धांत (The learning Process and Learning theories)
- मनोवृत्ति का अर्थ एवं विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Attitude)
- मनोवृत्ति के अवयव एवं मापन (Components and Measurement of Attitude)
- धारणाओं का अर्थ एवं महत्व (Meaning and Importance of Perception)
- धारणाओं को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Perception)

इकाई - **IV: नेतृत्व एवं अभिप्रेरण (Leadership and Motivation)**

- नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Leadership)
- नेतृत्व की विशेषताएँ एवं महत्व (Characteristics and Importance of Leadership)
- एक अच्छे नेता के गुण (Qualities of as Good Leader)
- नेतृत्व की शैलियाँ (Leadership Styles)
- परिवर्तन का प्रबंधन (Management of Change)
- अभिप्रेरण का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Motivation)
- अभिप्रेरण की विशेषताएँ एवं महत्व **(**Characteristics and Importance of Motivation)
- अभिप्रेरण की प्रक्रिया एवं सिद्धांत (Process and Theories of Motivation)
- मौद्रिक तथा अमौद्रिक अभिप्रेरण **(**Monetary and Non-Monetary Motivation)

इकाई - **V: संघर्ष का प्रबंधन एवं कार्य दबाव (Conflict Management and Work Pressure)**

- संघर्ष का अर्थ एवं परिणाम (Meaning and Results of Conflict)
- संघर्ष की प्रकृति एवं प्रकार (Nature and Types of Conflict)
- संघर्ष के समाधान की विधियाँ (Methods of Conflict Resolution)
- कार्य दबाव का अर्थ एवं प्रकार (Meaning and Types of Work Pressure)
- कार्य दबाव के कारण एवं प्रबंधन(Reasons and Management of Work Pressure)

सम्बन्धित पुस्तकें:

- Robbins, P. Stephen, Judg,e A. Timothy, Sanghi, Seema, 2010, Essentials of Organizational Behavior, 10th Edition, Pearson Publication, Delhi.
- Luthans, Fred, 2011, Organizational Behavior: An Evidence-Based Approach, 12th Edition, Tata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.
- Mcshane, L.S., Von, Glinow A. M., Sharma R. R, 2010, Organisational Behaviour, 4th EditionTata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.

इकाई 1 संगठनात्मक व्यवहार का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संगठनात्मक व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषाएँ
1.3 संगठनात्मक व्यवहार की विशेषताएँ
1.4 संगठनात्मक व्यवहार के मुख्य अंग
1.5 संगठनात्मक व्यवहार की मूल धारणाएँ
1.6 व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाशाएँ
1.7 व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ एवं निर्धारक तत्व
1.8 सारांश
1.9 बोध प्रश्न
1.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- संगठनात्मक व्यवहार के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।
- वर्तमान समय में संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन के महत्व को समझ सकेंगे।
- व्यक्तित्व की अवधारणा का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

लोग संगठन में कोई विशेष व्यवहार क्यों करते हैं? एक व्यक्ति या समूह दूसरों से अधिक उत्पादकीय क्यों होते हैं? ये और इसी तरह के कुछ अन्य प्रश्न अध्ययन के एक नये क्षेत्र संगठनात्मक व्यवहार से संबंधित है।

'संगठनात्मक दो शब्दों के योग से बना है, संगठन+व्यवहार। संगठन का अभिप्राय एक ऐसी इकाई से है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति सम्मिलित होकर सामूहिक प्रयास द्वारा उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए काम करते हैं। जैसे – एक कम्पनी, एक स्कूल, एक क्लब, आदि सभी संगठन हैं दूसरी ओर, व्यवहार का अभिप्राय किसी एक व्यक्ति या समूह द्वारा की जाने वाली क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं से है। जैसे – एक व्यक्ति अथवा समूह संगठन में महत्वपूर्ण काम मिलने पर बहुत खुश होता है। यह उसका व्यवहार है। इस प्रकार

संगठनात्मक व्यवहार का अभिप्राय एक संगठन में रहकर लोगों द्वारा किए जाने वाले व्यवहार से है।

1.2 संगठनात्मक व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषाएँ

संगठनात्मक व्यवहार का अर्थ

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर संगठनात्मक व्यवहार की जानकारी क्यों आवश्यक है? इसका उत्तर है–यदि यह जान लिया जाए कि लोग संगठन में रहकर कोई विशेष व्यवहार क्यों करते हैं अथवा किस संगठनात्मक वातावरण में लोग कैसा व्यवहार करते हैं, तो ऐसी विधियां खोजी जा सकती हैं जिनके द्वारा लोग अधिक प्रभावपूर्ण से काम करने लग जाएं। अतः संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त होती है कि लोग संगठन में कोई विशेष व्यवहार क्यों करते हैं अथवा एक व्यक्ति या समूह दूसरों से अधिक उत्पादकीय क्यों होता है। इस तरह की जानकारियां प्राप्त करके लोगों के व्यवहार के संबंध में भविष्यवाणी करना तथा उसे नियंत्रित करना संभव होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन से संगठनात्मक प्रभावशीलता में सुधार किया जा सकता है।

टूल बाक्स – 1
संगठनात्मक व्यवहार संगठनात्मक व्यवहार का अर्थ संगठन में मानवीय व्यवहार का अध्ययन करने से है ताकि संगठनात्मक प्रभावशीलता में सुधार किया जा सके।

संगठनात्मक व्यवहार की परिभाषाएं

संगठनात्मक व्यवहार की मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

(i) **डेविस तथा न्यूस्ट्राम** के अनुसार, ''लोग संगठनों में किस प्रकार काम करते हैं, इसका अध्ययन करना तथा प्राप्त जानकारी का उपयोग करना ही संगठनात्मक व्यवहार है।''

(ii) **फ्रेड लुथांस** के अनुसार, ''संगठनात्मक व्यवहार संगठनों मे मानवीय व्यवहार की समझ, पूर्वानुमान एवं नियंत्रण से प्रत्यक्ष रुप से संबंधित है।''

(iii) **जॉन न्यूस्ट्राम तथा कीथ डेविस के** अनुसार, ''संगठनात्मक व्यवहार, इस बात का अध्ययन व प्राप्त जानकारी का उपयोग करना ही संगठनों में लोग व्यक्तिगत व सामूहिक रुप से कैसे व्यवहार करते हैं। यह ऐसी विधियों की पहचान है जिनमें लोग अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकें।

(iv) **डरबिन** के अनुसार, ''संगठनात्मक व्यवहार का अध्ययन उस संगठन के लोगों के व्यवहार को समझने का एक व्यवस्थित प्रयास है जिसके लोग अभिन्न अंग हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर संगठनात्मक व्यवहार को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है –

''संगठनात्मक व्यवहार व्यक्ति एवं समूह द्वारा की गई उस क्रिया या प्रतिक्रिया का वर्णन करता है जो काम के दौरान आस–पास के वातावरण के संपर्क में आने से उत्तेजित होती है।''

1.3 संगठनात्मक व्यवहार की विशेशताएँ

संगठनात्मक व्यवहार की विशेषताएँ अथवा प्रकृति

संगठनात्मक व्यवहार की विशेषताएँ अथवा इसकी प्रकृति के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:–

(i) **OB एक व्यवस्थित अध्ययन है:** एक व्यवस्थित अध्ययन है न कि अटकलबाजी। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को सर्दी के मौसम में बुखार हो जाए तो उसका एक शुभचिंतक कहेगा कि गर्म कपड़े नही डाले होंगे, दूसरा कहेगा कि ठंडे पेय पदार्थ ले लिए होंगे, तीसरा कहेगा कि इस मौसम में ऐसा होता ही है, आदि आदि। यह किसी को नहीं पता कि ऐसा क्यों हुआ। फिर भी लोग अटकल करने से नहीं चूकते। OB के अंतर्गत इस तरह की अटकलबाजियों के स्थान पर व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। यह जानने की कोशिश की जाती है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ। अतः एक व्यवस्थित अध्ययन है जिसमें कारण एवं परिणाम को पहचानने का प्रयास किया जाता है।

(ii) **OB की विषय वस्तु** : OB के अंतर्गत मुख्यतः व्यक्ति, समूह, संगठन संरचना, तकनीक, तथा वातावरण का अध्ययन किया जाता है। यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति एवं समूह विभिन्न परिस्थितियों में कैसे व्यवहार करते हैं। विभिन्न प्रकार की

संगठन संरचनाओं (जैसे – पदों का क्रम, नियम, कार्यविधि, रिपोटिंग पद्धति, रिवार्ड पद्धति आदि) का लोगों के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है। तकनीक (जैसे–उत्पादन विधि) से लोगों के व्यवहार को कैसे प्रभावित होता है। इसी प्रकार वातावरण (जैसे –परिवार, सरकार, मित्र आदि) लोगों के व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।

(iii) **OB उपयोग प्रधान है** : OB से अनेक ऐसी विधियां प्राप्त होती हैं जिनके उपयोग से संगठन को कुशल एवं प्रभावी बनाया जा सकता है। ये विधियां संगठन ढांचे, अभिप्रेरणा, संदेशवाहन, नेतृत्व, प्रशिक्षण, संघर्ष, तनाव, आदि के संबंध में हो सकती है। इनकी प्राप्ति के लिए कर्मचारी मनोवृत्ति, अवरोध, सीखना, व्यक्तित्व, व्यवहारात्मक विशलेषण तथा मानव व्यवहार के अन्य पहलुओं के संबंध में लगातार शोध किए जा रहे हैं।

(iv) **OB निष्पादन प्रधान है** : OB किसी न किसी रुप में निष्पादन से संबंधित होता है। इसके अंतर्गत निष्पादन से संबंधित अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजे जाते हैं। जैसे –किसी व्यक्ति की performance कम या अधिक अधिक क्यों है? इसे कैसे सुधारा जा सकता है? क्या प्रशिक्षण से इसमें सुधार संभव है?

(v) **OB विभिन्न दर्शनग्राही ज्ञान है** : इसका अभिप्राय यह है कि यह विषय अनेक अन्य विषयों के सिद्धान्त, मॉडल, विचारधाराओं तथा पद्धतियों के मिश्रण से बना है। OB के वर्तमान स्थिति तक पहुंचने में योगदान करने वाले मुख्य विषय इस प्रकार हैं – मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीति शास्त्र, आदि।

(vi) **OB प्रबंध का एक अंग है** : OB इस बात से संबंधित है कि व्यक्ति (व्यक्तिगत व सामूहिक रुप से) संगठन में कैसे व्यवहार करता है। दूसरी ओर, प्रबंध संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति से संबंधित है। उद्देश्य मानव संसाधन के बिना प्राप्त नहीं किए जा सकते। अतः एक प्रबंधक को OB का ज्ञान होना आवश्यक है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्ति का जन्म प्रबंध को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं बल्कि प्रबंध के एक सहयोगी के रुप में हुआ है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि OB प्रबंध का एक अहम अंग है।

(vii) **OB परिवर्तन प्रधान है** : OB की प्रकृति परिवर्तन प्रधान है। मानवीय व्यवहार बदलता रहता है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति की मनोवृति, अवरोध, व्यक्तित्व, आदि में परिवर्तन होते रहते हैं। परिणामतः व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने की नई विधियां खोजते रहना पड़ता है। ऐसा करके ही वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

(viii) **OB मानव व्यवहार के वर्णन, अनुमान व नियंत्रण से संबंधित है**: OB की प्रकृति मानव व्यवहार के वर्णन, अनुमान व नियंत्रण करने की है।

- OB के अंतर्गत यह जानकारी प्राप्त होती है कि किसी व्यक्ति के किसी विशेष व्यवहार के क्या कारण हैं। उदाहरण के लिए, एक महत्वपूर्ण व्यक्ति कम्पनी को छोड़कर चला जाता है। खोज करने पर पता चलता है कि पर्याप्त वेतन के अभाव में ऐसा हुआ। यह मानव व्यवहार के वर्णन की बात है।
- OB के अंतर्गत यह जानकारी प्राप्त होती है कि एक व्यक्ति किसी विशेष परिस्थिति में कैसा व्यवहार करेगा। यह मानव व्यवहार का अनुमान है।
- OB के अंतर्गत यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि लोग किसी विशेष परिस्थिति में कैसा व्यवहार करेगा। विपरीत व्यवहार की आशंका को समय पर ही सही विधि लागू करके समाप्त कर दिया जाता है। यह मानव व्यवहार का नियंत्रण है।

(ix) **OB अध्ययन का नवीन क्षेत्र है** : OB अध्ययन का एक नवीन क्षेत्र है। इसकी लोकप्रियता सन् 1950 से लगातार बढ़ रही है। फिर भी इसे एक विषय की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि अभी तक इसके स्वयं के सिद्धान्त व अवधारणाएँ नहीं बनाए ता सके हैं। इस क्षेत्र की पहचान बनाने के लिए अनेक दूसरे विषयों के सिद्धान्त एवं अवधारणाएँ की मदद ली गई है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अभी अपनी OB शैशव अवस्था में है और धीरे–धीरे विकास की ओर अग्रसर है।

(x) **OB में अध्ययन के तीन स्तर हैं** : OB में तीन स्तरों पर मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। ये हैं – व्यक्ति, समूह व संगठन स्तर। इन्हें निम्न चित्र में दिखाया गया है।

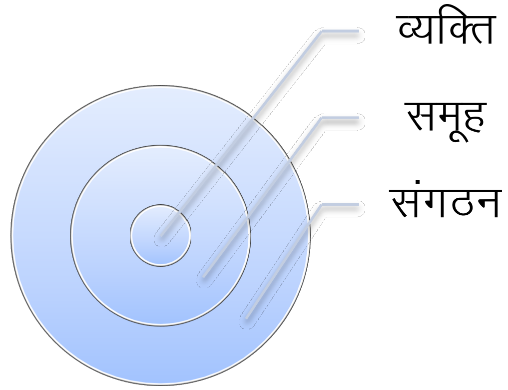

चित्र 11.1 **OB में अध्ययन के तीन स्तर**

(xi) **OB विज्ञान एवं कला दोनों हैः** OB के अंतर्गत व्यक्तियों के व्यवहार के कारणों एवं परिणामों के बीच संबंध स्थापित किया जाता है। अतः यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। दूसरी ओर, OB के अंतर्गत किए गए अध्ययनों का प्रयोग लोगों के व्यवहार का वर्णन करने, अनुमान लगाने व नियंत्रण करने के लिए किया जाता है अतः यह एक कला है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 संगठनात्मक व्यवहार को समझना क्यों आवश्यक है?
प्र.2 संगठनात्मक व्यवहार विज्ञान है या कला?
प्र.3 संगठन में परिवर्तन क्यों आवश्यक हैं?
प्र.4 क्या संगठनात्मक व्यवहार एक नवीन क्षेत्र है?

1.4 संगठनात्मक व्यवहार के मुख्य अंग

OB व्यक्ति, समूह, तथा वातावरण विशेषताओं का अध्ययन है। इसके अतिरिक्त लोग एक ढ़ांचे मे रहकर काम करते हैं और काम करते समय तकनीक का प्रयोग भी करते हैं। इस प्रकार कुल पांच अंगों से मिलकर बनता है। ये हैं – व्यक्ति, समूह, तकनीक, संगठन, संरचना तथा वातावरण। इनकी संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित हैं :

(i) **व्यक्ति** : व्यक्ति ही किसी संगठन का निर्माण करते हैं। इसलिए व्यक्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। व्यक्तियों के बारे में एक विशेष बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से भिन्न होता है। OB के अंतर्गत लगभग एक–सा व्यवहार

करने वाले व्यक्तियों की श्रेणियों बना दी जाती हैं। फिर प्रत्येक श्रेणी की विशेषताओं का अध्ययन करके मानव व्यवहार के वर्णन, अनुमान व नियंत्रण की विधियों की खोज की जाती है।

(ii) **समूह** : संगठन का अभिप्राय उस इकाई से है जहां दो या अधिक व्यक्ति समूह में कार्य करते हैं। इसलिए संगठनात्मक व्यवहार में मानव समूह का विशेष महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत रुप में एव सामूहिक रुप में भिन्न तरीके से व्यवहार करता है। OB के अतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि लोग जब समूह में होते हैं तो कैसे व्यवहार करते हैं ताकि समूहों में लोगों के आचरण को नियंत्रित किया जा सके।

(iii) **जॉब व तकनीक** : जॉब का अभिप्राय कार्य–स्थल पर व्यक्तियों को सौंपे गए कुल काम से है। जॉब स्वयं लोगों के व्यवहार को प्रभावित करती है। इसलिए OB में जॉब पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। यहां यह देखा जाता है कि जो जॉब किसी व्यक्ति या समूह को सौंपी जा रही है क्या वे उसे पसंद करते हैं या नहीं। जॉब के दौरान व्यक्तियों व समूहों में होने वाले संपर्क से भी उनका व्यवहार प्रभावित होता है। इसलिए जॉब विभाजन पर विशेष ध्यान दिए जाने की जरुरत होती है। इसी प्रकार, जॉब के दौरान होने वाला व्यवहार तकनीक व प्रयोग होने वाले उपकरणों से भी प्रभावित होता है। मनपसंद तकनीक व उपकरणों के प्रयागे से लोगों का व्यवहार सकारात्मक रहता है अन्यथा इसके विपरीत। अतः जॉब व तकनीक दोनों OB के महत्वपूर्ण अंग हैं।

(iv) **संगठन संरचना** : संगठन संरचना लोगों के कार्य संबंधों को परिभाषित करती है। इसके अंतर्गत लोगों के मध्य अधिकार एवं उत्तरदायित्व का वितरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त रिपोर्टिंग पद्धति, रिवार्ड पद्धति, नियम कार्यविधि, आदि का निर्धारण होता है। प्रत्येक प्रकार की संगठन संरचना में ये भिन्न होते हें। कार्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संगठन संरचना का निर्धारण किया जाता है। OB के अंतर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि किस परिस्थिति में किस प्रकार की संगठन संरचना उपयुक्त रहेगी। संगठन संरचना जितनी अधिक

प्रभावी होती है, कर्मचारियों के व्यवहार को नियंत्रित करना उतना ही अधिक आसान रहता है।

(v) **वातावरण** : कोई भी संगठन शून्य में स्थापित नहीं होता। इसकी स्थापना समाज में होती है। समाज के विभिन्न अंग, जैसे–परिवार, सरकार, सामाजिक संस्थाएं मिलकर वातावरण बनाते हैं। वातावरण के इन घटकों का लोगों के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। OB के अंतर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि वातावरण के विभिन्न अंग लोगों के व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।

1.5 संगठनात्मक व्यवहार की मूल धारणाएँ

OB के अंतर्गत मानव व्यवहार के संबंध में जो कुछ भी कहा जाता है वह कुछ आधारभूत धारणाओं अथ्वा मान्यताओं पर आधारित है। ये धराणाएं अथवा मान्यताएं निम्नलिखित हैंः

(i) **व्यक्तिगत विशेषताओं में भिन्नताः** OB की एक महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्राणी होता है। इसीलिए कहा जाता है कि 'each person is unmatched'। प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृत्ति, अवबोध, सीखने की क्षमता, व व्यक्तित्व दूसरों से भिन्न होती है। प्रत्येक व्यक्ति का अभिप्रेरित होने का ढंग अलग होता है, जैसे – कुछ लोग मौद्रिक प्रेरणाओं से तथा कुछ अमौद्रिक प्रेरणाओं से अभिप्रेरित होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग नेतृत्व शैलियों को पसंद करता है। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि प्रबंधक को कर्मचारियों से व्यवहार करते समय उनकी विशेषताओं का ध्यान रखना होता है।

(ii) **एक व्यक्ति संपूर्णता में** : OB की दूसरी मान्यता प्रत्येक व्यक्ति को संपूर्णता के रुप में देखना है। इसका अभिप्राय यह है कि जब एक व्यक्ति कार्य–स्थल पर काम करता है तो उसकी भावनाएं, आवश्यकताएं, पारिवारिक जीवन, आदि उसके साथ ही रहते हैं। ऐसा संभव नहीं है कि कार्य–स्थल पर व्यक्ति के साथ व्यवहार करते समय उसके पारिवारिक जीवन के प्रभावों को अलग कर दिया जाए। उदाहरण के लिए, यदि एक कर्मचारी का पारिवारिक जीवन अस्त–व्यस्त है तो इससे उसका कार्य–स्थल पर आकर काम करना प्रभावित होगा। कहने का अभिप्राय यह है कि

कर्मचारी के साथ व्यवहार करते समय कार्य–स्थल पर उसकी उपस्थिति के साथ–साथ उसके शेष जीवन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। अतः प्रबंधक द्वारा कर्मचारियों को 'संपूर्ण मानव' के रुप में स्वीकार करना चाहिए।

(iii) **कोई व्यवहार आकस्मिक नहीं होता** : OB के अंतर्गत ऐसा माना जाता है कि एक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यवहार अचानक/अकारण नहीं होता बल्कि उसके पीछे कोई–न–कोई कारण अवश्य होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई कर्मचारी किसी मुद्दे को लेकर अपने बॉस का विरोध करता है तो समझना चाहिए कि यह विरोध आकस्मिक नहीं है बल्कि इसका कोई विशेष कारण अवश्य है। अतः प्रबंधक के कर्मचारियों के व्यवहार के पीछे काम कर रही शक्तियों को पहचानते हुए ही उनके साथ व्यवहार करना चाहिए।

(iv) **भागीदारी की इच्छा** : OB की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति निर्णयों में भागीदारी की इच्छा रखता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि वह एक योग्य एवं समझदार प्राणी है। उसमें बेहतर सलाह देने व निर्णय लेने की क्षमता है। यदि उसे मौका दिया जाए तो वह कोई भी काम करके दिखा सकता है। अतः प्रबंधक को कर्मचारियों से व्यवहार करते समय उनकी इस भावना का आदर करना चाहिए।

(v) **मानव एक आर्थिक उपकरण नहीं है**: OB की इस मान्यता के अनुसार, मानव के साथ अन्य भौतिक (निर्जीव) वस्तुओं से भिन्न व्यवहार किया जाना चाहिए। मानव एक जीवित प्राणी है जो सम्मान प्राप्ति का भूखा होता है। उसके सम्मान को ठेस पहुंचे, यह उसे बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं है। अतः प्रबंधकों को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि कर्मचारी एक मानव है और उसके साथ मानवीय व्यवहार ही अपेक्षित है।

(vi) **संगठन एक सामाजिक प्रणाली है** : OB के अंतर्गत माना जाता है कि संगठन एक सामाजिक प्रणाली है। यहां सामाजिक व प्रणाली का अर्थ स्पष्ट कर लेना जरुरी है। सामाजिक का अभिप्राय उस इकाई से है जिसका संबंध समाज प्राणियों से है। दूसरी ओर, प्रणाली अनेक अंगों वाली ऐसी इकाई है जिसके सभी अंग मिलकर काम करते हैं। तभी सफलता मिलती है। जैसे – हमारा शरीर प्रणाली का एक अच्छा उदाहरण है। इसके आधार पर संगठन को एक सामाजिक प्रणाली कहना उचित है। – क्योंकि

इसे लोगों द्वारा (सामजिक प्राणियों द्वारा) स्थापित किया जाता है। और सभी लोग (अर्थात अंग) औपचारिक तथा अनौपचारिक रुप से एक–दूसरे के साथ जुड़े होते है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रबंधक को एक व्यक्ति से व्यवहार करते समय ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वारा किए गए व्यवहार से अन्य व्यक्ति (प्रणाली के अन्य अंग) भी प्रभावित हो सकते हैं।

(vii) **पारस्परिक हित** : OB के अंतर्गत पारस्परिक हित की धारणा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रत्येक संगठन में दो पक्षधर होते हैं – एक कर्मचारी वर्ग तथा दूसरा संगठन स्वयं (अर्थात) दोनों का पारस्परिक हित होता है। एक ओर, संगठन के अभाव में कर्मचारी वर्ग अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकता। दूसरी ओर, कर्मचारियों के अभाव में संगठन द्वारा अपने उद्देश्यों को पूरा करना असंभव है। पारस्परिक हित धारणा टीम भावना की ओर इशारा करती है अर्थात जब दोनों पक्ष साथ मिलकर काम करते हैं। तभी दोनों के उद्देश्यों को सफलता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। यह स्थिति दोनों पक्षकारों को संतुष्टि प्रदान करने वाली होती है। अतः प्रबंधक को व्यवहार करते समय इस बात का ध्यान रखना होता है कि दोनों पक्षकारों को ही एक–दूसरे की जरुरत है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.5 निम्नलिखित को समझाएं। (i) समूह (ii) जॉब (iii) व्यक्ति (iv) वातावरण प्र.6 संगठनात्मक व्यवहार की किन्हीं दो मूल विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

1.6 व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ

व्यक्तित्व का अर्थ

संगठनात्मक व्यवहार में मुख्य रुप से मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और मानव व्यवहार का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अनुरुप ही

व्यवहार करता है। प्रबंधकों के लिए आवश्यक है कि वे 'व्यक्तित्व' को समझें ताकि वे अपने अधीनस्थों के व्यवहार को नियंत्रित कर सकें।

व्यक्तित्व का अभिप्राय एक व्यक्ति के मानसिक तथा शरीरिक गुणों के मिश्रण से है। जिनके आधार पर वह वातावरण से विशेष समायोजन स्थापित करता है। व्यक्तित्व के आधार पर ही एक व्यक्ति अपने समूह के अन्य सदस्यों से भिन्न दिखाई देता है। व्यक्तित्व व्यक्ति के किसी एक गुण को ही नहीं कहा जाता है बल्कि यह व्यक्ति के सभी मानसिक व शारीरिक गुणों का योग है। इसीलिए व्यक्तित्व को संपूर्णता के रुप में माना जाता है। जिस प्रकार जब अनेक ईटों को सीमेंट के साथ जोड़ दिया जाता है तो मकान का निर्माण होता है। ठीक उसी प्रकार जब व्यक्ति के अनेक गुणों को जोड़ दिया जाता है तो व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

टूल बाक्स – 2
व्यक्तित्व व्यक्तित्व जन्मजात व अर्जित प्रवृत्तियों का योग है।

व्यक्तित्व की परिभाषाएं

विभिन्न विद्वानों ने व्यक्तित्व को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। इसकी मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :–

1- **आइजैक के अनुसार**, ''व्यक्तित्व, व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धिमत्ता और शारीरिक संरचना का लगभग स्थाई व स्थिर संगठन है जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।''

2- **ऑलपोर्ट** के अनुसार : ''व्यक्तित्व, व्यक्ति में उन मनो–वैज्ञानिक प्रणालियों का गतिशील संगठन है जो उसके वातावरण से उसके अद्वितीय समायोजन निर्धारित करती है।''

3- **वैलनटीन** के अनुसार, ''व्यक्तित्व जन्मजात और अर्जित स्वभाव का योग है।''

4- **चाईल्ड के** अनुसार, ''व्यक्तित्व से तात्पर्य कमोवेश स्थाई आंतरिक घटकों से है जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय से दूसरे समय में संगत बनाते हैं और समान परिस्थितियों में अन्य लोगों के व्यवहार से भिन्न करते हैं।''

5- **वरगस** के अनुसार, ''व्यक्तित्व, व्यक्ति के व्यवहार, विचारों तथा भावनाओं का अद्वितीय व अपेक्षाकृत स्थाई प्रारुप होता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं कें आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विभिन्न गुणों का ऐसा गतिशील संगठन होता है जो व्यक्ति के व्यवहार को अद्वितीय (अर्थात अन्यों से भिन्न) बनाता है।

1.7 व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ एवं निर्धारक तत्व

व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ

व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) मनोशारीरिक तंत्रः व्यक्ति एक ऐसा तंत्र है जिसमें दो प्रकार के गुण सम्मिलित होते हैंः जैसे–मानसिक गुण तथा शारीरिक गुण। मानसिक गुणों के अंतर्गत चरित्र, स्वभाव, बुद्धिमत्ता, आदि को सम्मिलित किया जाता है। दूसरी ओर, शारीरिक गुणों में व्यक्ति का रंग, कद, भार, स्वास्थ्य, आदि सम्मिलित होते हैं। व्यक्तित्व न तो पूर्ण रुप से मानसिक और न ही पूर्ण रुप सें शारीरिक गुणों पर आधारित है बल्कि यह दोनों का मिश्रण होता है।

(ii) गतिशील संगठन : व्यक्तित्व एक गतिशील संगठन है। संगठन का अभिप्राय विभिन्न मानसिक व शारीरिक गुणों के एकत्रण से है। अर्थात जब व्यक्ति के सभी गुणों को सामूहिक रुप में देखते हैं उसे संगठन कहते हैं। संगठन के विभिन्न गुणों को अलग नहीं किया जा सकता। गतिशील का अभिप्राय परिवर्तित होने से है। संगठन कें विभिन्न गुणों में समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है। इसीलिए व्यक्तित्व को एक गतिशील संगठन का नाम दिया गया है। उदाहरण के लिए, माना आज कोई व्यक्ति ईमानदार व समयनिष्ठ है। हो सकता है कल को वह ईमानदार व समयनिष्ठ न रहे।

(iii) संगतता : व्यक्तित्व की तीसरी मुख्य विशेषता संगतता है। इसका अभिप्राय व्यक्ति के व्यवहार का दो भिन्न अवसरों पर लगभग समान होता है। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति घर पर समयनिष्ठ है तो वह कार्यालय में भी समयनिष्ठ रहेगा।

(iv) समायोजन योग्यता : व्यक्तित्व व समायोजन योग्यता में गहरा संबंध है। व्यक्तित्व के आधार पर ही एक व्यक्ति वातावरण से समायोजन स्थापित करता है। यदि एक

व्यक्ति वातावरण में स्वयं का समायोजन न कर सके तो कहा जाएगा कि व्यक्ति में व्यक्तित्व का अभाव है अन्य शब्दों में, व्यक्तित्व ऐसी शक्ति है जो हर तरह के वातावरण में व्यक्ति को समायोजित होने में मदद कराती है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न होता है। इसीलिए एक ही तरह के वातावरण में विभिन्न लोग भिन्न ढंग से समायोजन स्थापित करते हैं।

(v) अद्वितीयता : व्यक्तित्व में अद्वितीय होने की विशेषता होती है। कोई भी दो व्यक्ति चाहे कितने ही समान क्यों न हों, एक जैसे व्यक्तित्व वाले नहीं होते। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति अनेक विशेष/अद्वितीय गुणों का समूह होता है। फलस्वरुप, प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अद्वितीय होता है।

(vi) संपूर्णता : प्रत्येक व्यक्ति में अनेक मानसिक एवं शारीरिक गुण विद्यमान होते हैं। इन सभी गुणों को मिलाकर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अन्य शब्दों में, प्रत्येक गुण व्यक्तित्व का एक अंशमात्र होता है। सभी गुणों के कुल को ही व्यक्तित्व कहते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व एक संपूर्ण इकाई के रुप में होता है। इसके अंदर कें गुणों को अलग नहीं किया जा सकता। यदि ये गुण अलग हो जाएं तो व्यक्तित्व का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

(vii) दृढ़ता : दृढ़ता का होना व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यदि व्यक्तित्व में से दृढ़ता को घटा दिया जाए तो शेष असफलता बचती है। दृढ़ व्यक्तित्व वाले लोग ही हर प्रकार के वातावरण में समायोजन कर सकते हैं और सफल होते हैं। जिस व्यक्तित्व में दृढ़ता का अभाव हो उसे अच्छा व्यक्तित्व नहीं माना जा सकता।

(viii) सामाजिकता : व्यक्तित्व सामाजिक संपर्कों से प्रभावित होता है। जब एक व्यक्ति समाज के विभिन्न लोगों के संपर्क में आता है तो उसे कई प्रकार कें अनुभव प्राप्त होते हैं ये अनुभव व्यक्तित्व विकास में अहम भूमिका अदा करते हैं। व्यक्तित्व के समाज के संपर्क में आने से परिपक्वता आती है जिससे व्यक्तित्व में निखार आता है।

(ix) आत्म–चेतना : आत्म–चेतना का अर्थ 'स्वयं का ज्ञान' अथवा 'स्वयं के प्रति जागरुकता' से है। जब एक व्यक्ति में आत्म–चेतना आ जाती है तभी व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। अन्य शब्दों में, जब तक व्यक्ति स्वयं को नहीं जानता तब तक व्यक्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे– एक बच्चे में आत्म–चेतना का अभाव होने

के कारण ही व्यक्तित्व का भी अभाव होता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है और स्वयं को जानने लगता है तभी उसका व्यक्तित्व दिखाई देने लगता है।

(x) **लक्ष्य निर्देशित** : व्यक्तित्व व लक्ष्य में गहरा संबंध है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व लक्ष्य द्वारा निर्देशित होता है। लक्ष्य ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को अच्छा या खराब बनाता है। यदि एक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य सकारात्मक है तो उसका व्यक्तित्व उच्च कोटि का होगा अन्यथा इसके विपरीत। अतः कहा जा सकता है कि लक्ष्य व्यक्तित्व को दिशा प्रदान करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 क्या व्यक्तित्व जन्मजात प्रवृत्ति है?
प्र.8 ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व को कैसे परिभाषित किया है?
प्र.9 आतम चेतना से आप क्या समझते हैं?

व्यक्तित्व के निर्धारक घटक

- व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाल घटक

एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित करने में अनेक घटकों का योगदान होता है। व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कुछ घटक ऐसे होते हें जो बच्चे को अपने माता–पिता से प्राप्त होते हैं। कुछ अन्य घटकों का संबंध वातावरण सक होता है। इसी प्रकार कुछ घटकों को मनोवैज्ञानिक घटकों की श्रेणी में रखा जाता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

a) जैविक अथवा वंशानुक्रम घटक
b) वातावरणीय घटक
c) मनोवैज्ञानिक घटक

A. जैविक अथवा वंशानुक्रम घटक

इन घटकों का संबंध व्यक्ति के वंशानुक्रम पक्ष से होता है। ये घटक व्यक्ति में जन्म से ही उपस्थित होते हैं। ये सभी व्यक्तियों को अपने माता–पिता व अन्य पूर्वजों से

प्राप्त होते हैं। ये व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं इस श्रेणी में आने वाले मुख्य घटक निम्नलिखित हैं।'

1. **शारीरिक संरचना** : व्यक्तित्व निर्माण में शारीरिक संरचना में मुख्य रुप से रंग–रुप, कद, भार, शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक दोष आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि सभी गुण व्यक्तियों को अपने माता–पिता से प्राप्त होते हैं। यदि एक व्यक्ति में ये सभी गुण संतुलित मात्रा में उपलब्ध हों तो वह देखने में सुन्दर लगता है और सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। इससे उसका आत्म–विश्वास बढ़ता है। व्यक्ति में आत्म – विश्वास के बढ़ने का उसके व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता हे। इसके विपरीत, सुंदर शारीरिक संरचना के अभाव में आत्म–विश्वास की कमी रहती है जिसका व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
2. **बुद्धि** : शारीरिक संरचना की भांति ही बुद्धि को भी वंशानुक्रम घटक ही माना जाता है। बुद्धि व्यक्तित्व का सबसे अहम घटक होता है। यदि एक व्यक्ति की शारीरिक संरचना संतुलित है लेकिन उसमें बुद्धि का अभाव है तो उसका व्यक्तित्व उच्च श्रेणी का नहीं माना जाएगा। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति की शारीरिक संरचना असंतुलित है लेकिन उसमें बुद्धि है तो उसका व्यक्तित्व उच्च श्रेणी का माना जाएगा। बुद्धिमान व्यक्ति में स्वयं को हर तरह के वातावरण में समायोजित करने के क्षमता होती है। लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और समाज में उसकी एक विशेष पहचान होती है।
3. **लिंग** : यदि भारत के संदर्भ में देखा जाए तो उसके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालता है। भारत में प्रायः लड़कियों की ओर विशेष ध्यान नही दिया जाता है। उनकी पढ़ाई व अन्य भागीदारी पर प्रतिबंध लगाया जाता है। परिणामतः उनका विकास रुक जाता है। जिससे उनके व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर, लड़कों को पढाई व अन्य गतिविधियों में भागीदारी की पूरी स्वतन्त्रता होती है। उन्हें विकास के पूर्ण अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। इसका उनके व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का उच्च कोटि का होना या न होना उसके लिंग पर घटक कराता है।

B- वातावरणीय घटक

वैलेनटीन के अनुसार, ''व्यक्तित्व जन्मजात और अर्जित स्वभाव का योग है।'' इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व निर्माण के कुछ घटक तो जन्मजात होते हैं तथा कुछ अर्जित किए जाते हैं अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति का वातावरण उसके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालता है। मुख्य वातावरणीय घटक निम्नलिखित हैं :

1. **सामाजिक वातावरण** : सामाजिक वातावरण का अभिप्राय उन लोगों (माता–पिता, शिक्षक, पड़ौसी, मित्र आदि) के समूह से है जिनके मध्य व्यक्ति रहता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे सामाजिक वातावरण में स्वीकृति प्राप्त हो। अर्थात लोग उसे पसंद न करें व उसकी प्रशंसा करें जिस व्यक्ति का सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है, उसमें आत्म – विश्वास, नेतृत्व गुण व श्रेष्ठता के भाव का विकास होता है। परिणामतः उसके व्यक्तित्व में निखार आता है। इसके विपरीत, जिस व्यक्ति को सामाजिक वातावरण में स्वीकृति प्राप्त नहीं होती उसमें हीनता की भावना पैदा होती है जिसका उसके व्यक्तित्व पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक वातावरण का व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
2. **सांस्कृतिक वातावरण** : व्यक्तित्व के विकास में सांस्कृतिक वातावरण का बहुत बड़ा योगदान होता है। संस्कृति का अर्थ समाज के रीति–रिवाज, रहन–सहन, धार्मिक विश्वास, परंपराओं व आदतों से है। प्रत्येक व्यक्ति समाज में रहता है और प्रत्येक समाज की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है। जिस संस्कृति से संबंधित व्यक्ति होता है उसी के अनुसार उसका व्यक्तित्व बन जाता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि एक संस्कृति लोगों को नैतिकता का। पहली संस्कृति से संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनैतिकता की।
3. **भौगोलिक वातावरण** : व्यक्तित्व को ऊँचा अथवा नीचा बनाने में भौगोलिक वातावरण भी भागीदार होता है। भौगोलिक वातावरण का अभिप्राय एक स्थान की जलवायु से है। जिस स्थान की जलवायु गर्म होती है। वहां के लोग आलसी व काले होते हैं। इसके विपरीत, जिस स्थान की जलवायु ठंडी होती है वहां के लोग चुस्त व गोर होते हैं। लोगों की ये विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।

4. **पारिवारिक वातावरण** : एक व्यक्ति के पारिवारिक वातावरण में माता–पिता की योग्यताऐं।, परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्व, परिवार की आर्थिक स्थिति, परिवार का आकार, आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन सभी घटकों का व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, परिवार में बच्चों का सभी आवश्यकताएं पूरी हो जाने के कारण व्यक्तित्व का विकास तेजी से होता है।
5. **स्कूल का वातावरण** : स्कूल में बच्चे काफी समय व्यतीत करते हैं। अतः वहां के वातावरण का उनके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। स्कूल के वातावरण में मुख्य रुप से पढ़ाई का स्तर, मनोरंजन की सुविधाएं, खेल–कूद की सुविधाएं सांस्कृतिक गतिविधियां, पुस्तकालय की सुविधा आदि को सम्मिलित किया जाता है जो बच्चे ऐसे स्कूल में पढ़ते हैं जहां ये सभी सुविधाएं उपलब्ध हों, उनका व्यक्तित्व विकास तेजी से होता है। इसके विपरीत, जिन स्कूलों में इन सुविधओं का अभाव होता है वहां बच्चों का विकास धीमी गति से होता है।

- **मनोवैज्ञानिक घटक**

  अनेक ऐसे मनोवैज्ञानिक घटक हैं जो व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। ये निम्नलिखित हैः–

(i) **बौद्धिक विकास** : व्यक्तित्व का विकास व्यक्ति की बौद्धिक विकास के अंतर्गत सीखने की क्षमता, ज्ञान अर्जित करने की क्षमता, समस्याऐं हल करने की क्षमता, निर्णय लेने की क्षमता, परिस्थितियों से ताल–मेल बैठाने की क्षमता, आदि को सम्मिलित किया जाता है। जिस व्यक्ति का बौद्धिक विकास अधिक होता है उसका व्यक्तित्व भी उच्च श्रेणी का होता है अन्यथा इसके विपरीत।

(ii) **दृष्टिकोण** : एक व्यक्ति का दृष्टिकोण उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण नकारातमक होता है तो वह गलत कार्यों में रुचि लेता है। ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व ऊँचे स्तर का होता है। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण नकारात्मक होता है तो वह गलत कार्यों में रुचि लेगा। ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में गिरावट आना निश्चित है।

(iii) **इच्छा शक्ति** : इच्छा शक्ति व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाला मुख्य मनोवैज्ञानिक घटक है। जिस व्यक्ति में दृढ़ इच्छा शक्ति होती है वह कुछ भी करने की क्षमता

रखता है। ऐसे लोगों का व्यक्तित्व ऊँचे स्तर का होता है। इसके विपरीत, जिन लोगों में इच्छा शक्ति का अभाव होता है। वे हर समय असमंजस की स्थिति में रहते हैं। इन लोगों में आत्म–विश्वास की कमी होती है। व्यक्ति में इच्छा शक्ति का न होना व्यक्तित्व में गिरावट का सूचक होता है।

(iv) **अभिप्रेरणा** : अभिप्रेरण व्यक्तित्व के विकास में सहायक है। जो व्यक्ति अभिप्रेरित होते हैं उनकी नज़र उपलब्धियों की ओर होती है। यह एक अच्छे व्यक्तित्व का संकेत है। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति में अभिप्रेरणा की कमी है तो वह आलसी बन जाएगा। परिणामतः उनके व्यक्तित्व में गिरावट नज़र आने लगेगी।

1.8 सारांश

संगठनात्मक तंत्र में व्यक्ति उसका मुख्य आधार होता है। संगठन के लिए प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक अलग जगह होती है। किसी भी व्यक्ति की संरचना में उसकी शरीर रचना, उसका व्यक्तित्व तथा मूल भौतिक एवं सगुण महत्वपूर्ण होते है। इनमें कुछ बातें तो उसे विरासत में मिलती हैं तथा कुछ उसके वातावरण के साथ संपर्क द्वरा विकसित होती है। इस संदर्भ में संप्रेषण प्रक्रिया, दृष्टिकोण तंत्र तथा अभिप्रेरण प्रक्रिया अपनी भूमिका निभाती है। लोग अपने वातावरण की सूझबूझ प्राप्त करने हेतु विचारों, दृष्टिकोणों तथा सूचनाओं का आदान– प्रदान करते हैं। सामाजिक दृष्टि से लोगों के बीच परस्पर संपर्क उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य है। लोग वस्तु स्थिति के बारे में अलग–अलग तरीके से सोचते है। व्यक्तिगत व्यवहार में नजरिये की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अभिप्रेरणा की प्रक्रिया अंशतः स्वनिर्मित तथा अंशतः अनेक सकारात्मक तथा नकारात्मक अभिप्रेरकों के माध्यम से बाह्न परिवेश से प्रभावित होती है। जहां तक लोगों के जिन मूल्यों का प्रश्न है उनका निर्धारण लोगों के सांस्कृतिक उतार – चढ़ाव से जाना जा सकता है। जीवन मूल्य अपेक्षाकृत चिरस्थायी रहते हैं तथा लोगों के जीवन, कार्य तथा परिवेश के प्रति उनके नजरिये को अपने तरीके से ढ़ालते हैं। व्यक्तिगत व्यवहार का अध्ययन मनोविज्ञान विषय पर विशेष प्रभाव डालता है तथा स्पष्टतः कराता है कि क्यों व्यक्ति परिस्थितियों के प्रत्युत्तर में कैसे व्यवहार करते हैं तथा नेतृत्व को व्यक्तियों के व्यवहार को समझने के लिए विकसित किया जा चुका है। साथ ही सामाजिक–मनोविज्ञान सिद्धान्त ने समझाने का प्रयास किया है कि रुझान,

विश्वास, दृष्टिकोण तथा मूल्यों को उत्पन्न किया जाता है तथा वे कैसे व्यक्तिगत व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अतः व्यक्ति अलग–अलग तरीके से व्यवहार करते हैं जो उनके मूल्यों दृष्टिकोण, अभिप्रेरणा सीखने पर निर्भर करता है।

1.9 बोध प्रश्न

1. संगठन के व्यवहार को निर्धारित करने की पृष्ठभूमि क्या है?
2. संगठनात्मक व्यवहार की भूमिका बताइए।
3. व्यक्तिगत विकास के चरणों का वर्णन कीजिए।
4. संगठनात्मक व्यवहार को विस्तार से समझाइए तथा प्रबन्ध से इसका सम्बन्ध स्थापित कीजिए।
5. आज के युग में संगठनात्मक व्यवहार का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है? कथन को स्पष्ट कीजिए।
6. संगठनात्मक व्यवहार किस प्रकार बहुपक्षय अनुशासन है?
7. संगठनात्मक व्यवहार के विभिन्न मॉडलों को समझाइए।
8. अभिप्रेरण व्यक्तित्व के विकास में सहायक है। कथन को स्पष्ट कीजिए।
9. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों को तीन श्रेणियों में विभक्त कीजिए।
10. संगठनात्मक व्यवहार को समझना क्यों आवश्यक है?
11. संगठनात्मक व्यवहार विज्ञान है या कला?
12. संगठन में परिवर्तन क्यों आवश्यक हैं?

1.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- कुमार, आर. 2012, संगठनात्मक व्यवहार, प्रथम संस्करण, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- Robbins, P. Stephen, Judg,e A. Timothy, Sanghi, Seema, 2010, Essentials of Organizational Behavior, 10th Edition, Pearson Publication, Delhi.
- Luthans, Fred, 2011, Organizational Behavior: An Evidence-Based Approach, 12th Edition, Tata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.
- Mcshane, L.S., Von, Glinow A. M., Sharma R. R, 2010, Organisational Behaviour, 4th EditionTata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.

इकाई – IV : नेतृत्व एवं अभिप्रेरण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ

4.3 नेतृत्व की विशेषताएँ एवं महत्व

4.4 एक अच्छे नेता के गुण

4.5 नेतृत्व की शैलियाँ

4.6 परिवर्तन का प्रबंधन

4.7 अभिप्रेरण का अर्थ एवं परिभाषाएँ

4.8 अभिप्रेरण की विशेषताएँ एवं महत्व

4.9 अभिप्रेरण की प्रक्रिया एवं सिद्धांत

4.10 मौद्रिक तथा अमौद्रिक अभिप्रेरण

4.11 सारांश

4.12 बोध प्रश्न

4.13 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- नेतृत्व की अवधारणा एवं शैलियों को समझ सकेंगे।
- परिवर्तन के प्रबंधन का उल्लेख कर सकेंगे।
- अभिप्रेरण की अवधारणा एवं सिद्धांतों/विचारधाराओं का वर्णन कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

एक अनुमान के अनुसार एक कर्मचारी अपनी लगभग 60 प्रतिशत क्षमता का प्रयोग करता है लेकिन उपक्रम को लाभदायक बनाने के लिए व पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को आसानी से प्राप्त करने के लिए शेष 40 प्रतिशत क्षमता का प्रयोग किया जाना भी आवश्यक है। ऐसा तभी संभव है जब अधिनस्थों को उचित ढंग से प्रेरित करके उनमें कार्य करने के प्रति ऐसी लगन पैदा की जाए कि वे पूरे उत्साह के साथ कार्य करें। ऐसी प्रेरणा अथवा मार्ग–दर्शन वही अधिकारी दे सकता है जो एक कुशल प्रबन्धक होने के साथ–साथ एक अच्छा नेता भी हो।

एक प्रबन्धक का मुख्य कार्य संगठन में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं को संगठित करके पूर्व–निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। यहां विभिन्न व्यक्तियों से अभिप्राय उत्पादन के मानवीय तत्व से है जिसकी कार्यकुशलता पर गैर–मानवीय तत्वोंः जैसे–मशीन, माल आदि की उपयोगिता आधारित होती हैं। अतः स्पष्ट है कि संगठन में उत्पादन के मानवीय तत्व का महत्वपूर्ण स्थान है। अब प्रश्न यह उठता है कि उत्पादन के मानवीय तत्व की उपलब्ध क्षमता का कुशलतापूर्वक उपयोग कैसे किया जाए। किसी व्यक्ति की कार्यकुशलता का संबंध दो तत्वो से होता हैः प्रथम, किसी कार्य को करने की योग्यता का स्तर तथा द्वितिय, उसकी कार्य करने की इच्छा। जहां तक 'कार्य करने की योग्यता के स्तर' का प्रश्न है यह शिक्षण तथा प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन कार्य करने की इच्छा को अभिप्रेरण द्वारा ही पैदा किया जा सकता है।

4.2 नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषाएँ

नेतृत्व का अर्थ

नेता वह व्यक्ति होता है जो एक समूह के सभी व्यक्तियों पर अपना प्रभाव इस प्रकार रखता है कि वे सभी पूर्ण उत्साह तथा विश्वास के साथ पूरी क्षमता का प्रयोग करते हुए संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने में जुट जाते हैं। एक नेता की इस प्रकार की योग्यता अथवा गुण को ही नेतृत्व कहा जाता है।

टूल बाक्स – 1
नेतृत्व इसका अभिप्राय दूसरों को इस ढंग से प्रभावित करने का है ताकि वे वहीं करें जो नेता चाहे।

नेतृत्व की परिभाषाएँ

नेतृत्व का अभिप्राय उस व्यक्ति से है जो दूसरों को प्रभावित करने की योग्यता रखते हैं।

नेतृत्व के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए हैः

(1) **कून्टज तथा ओ'डोनेल के अनुसार,** "किसी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सन्देशवाहन के माध्यम से व्यक्तियों को प्रभावित कर सकने की योग्यता नेतृत्व कहलाती है।

(2) **जार्ज.आर.टेरी.** के अनुसार, "नेतृत्व व्यक्तियों को पारस्परिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वैच्छिक प्रयत्न करने के लिए प्रभावित करने की योग्यता है।"

निष्कर्ष के रुप में, नेतृत्व वह प्रक्रिया है जिससे समूह के लोगों को इस प्रकार प्रभावित किया जाता है कि वे सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्वयं ही अपनी पूरी क्षमता का प्रयोग करने लग जाते हैं।

4.3 नेतृत्व की विशेषताएँ एवं महत्व

नेतृत्व की विशेषताएँ

नेतृत्व की परिभाषाओं का विश्लेषण करने के पश्चात् इसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ अथवा लक्षण स्पष्ट होते हैः

(i) **प्रभावीकरण प्रक्रिया** : नेतृत्व एक प्रभावी करण प्रक्रिया के रुप में होता है। यहां प्रभावीकरण का अर्थ दूसरों को अपने प्रभाव में लेने से है। नेतृत्व के अंतर्गत नेता अपने अनुयायियों के साथ इस तरह का व्यवहार करते हैं कि वे स्वयं ही उसके प्रभाव में आ जाते है और जैसा वह चाहता है वे वैसा ही कार्य करने लगते हैं। ऐसा कहा जाता है कि प्रभावीकरण नेतृत्व का सार है।

(ii) **व्यवहार परिवर्तित करने वाली प्रक्रिया** : नेतृत्व में अनुयायियों का व्यवहार बदलने की शक्ति होती है। जिस प्रबन्धक में नेतृत्व योग्यता होती है उसके अधीनस्थों का कार्य निष्पादन अपेक्षाकृत बढ़िया होता है।

(iii) **नेता व अनुयायियों में आपसी संबंधः** नेतृत्व की मुख्य आवश्यकता अनुयायियों का होना है। बिना अनुयायियों के नेतृत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अनुयायियों के बिना नेता का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। नेतृत्व को सार्थक बनाने के लिए नेता के साथ कार्य करने वाले अनुयायियों (अथवा कर्मचारियों) का होना आवश्यक है। अतः नेतृत्व नेता व अनुयायियों के संबंधो की ओर संकेत करता है।

(iv) **सामूहिक उद्देश्य प्राप्तिः** नेतृत्व की एक मुख्य विशेषता सामूहिक उद्देश्य प्राप्त करना है। इसका अर्थ है कि इससे केवल संगठन के ही उद्देश्य प्राप्त नहीं होते बल्कि व्यक्तिगत उद्देश्यों की भी प्राप्ति होती है।

(v) **सतत् प्रक्रिया** : एक प्रबन्धक को नेतृत्व योग्यता का लगातार प्रयोग करना होता है। अर्थात इसकी आवश्यकता किसी विशेष समय पर ही न होकर हर समय होती है।

प्रबन्धन कला एवं नेतृत्व

प्रायः प्रबन्धन–कला तथा नेतृत्व को समानार्थक शब्द माना जाता है। लेकिन ऐसी धारणा बिल्कुल गलत है।

एक प्रबन्धक वह व्यक्ति होता है जो प्रबन्धकीय कार्य सम्पन्न करता है। दूसरी ओर, नेता वह व्यक्ति होता है जो अपने अनुयायियों की आकांक्षाओं को पूरा करता है। अपने अनुयायियों की आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं को पूरा करने के कारण ही एक नेता उन पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी होता है। (अर्थात जैसा नेता चाहता है अनुयायी वैसा ही करते हैं।)

सफलता प्राप्ति के लिए अधिनस्थों को अपने प्रभाव में लेना प्रबन्धक के लिए भी आवश्यक हैं। एक प्रबन्धक ऐसा तभी कर सकता है कि जब वह प्रबन्धक होने के साथ–साथ नेता की भूमिका भी अदा करे। ऐसा तभी संभव है जब वह अपने अधिनस्थों को अनुयायी बना ले। (अधिनस्थों) अनुयायी तभी बनेंगे जबकि उनकी आकांक्षाओं एवं अभिलााषाओं को महत्व दिया जाएगा। अतः यदि एक प्रबन्धक में नेतृत्व योग्यता भी है तो अधीनस्थ उसके प्रभाव में आ जाएंगे और जैसा वह चाहेगा वैसा ही काम करेंगे। इस बात को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

''प्रबन्धक + नेता योग्यता (नेता) = सफलता''

अतः कहा जा सकता है कि एक प्रबन्धक का नेता होना आवश्यक है।

दूसरी ओर, यह आवश्यक है कि नेता भी प्रबन्धक की भूमिका अदा करे। कोई व्यक्ति नेता स्वयं नही बनता बल्कि इसलिए बनता है कि कुछ लोग उसका अनुसरण करना चाहते हैं। नेता अपनी इस भूमिका में लोगों को संतुष्ट कर देता है। अतः उसके लिए जरुरी नहीं है कि प्रबन्धकीय कार्य करें। निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि ''सभी प्रबन्धक नेता होते हैं लेकिन सभी नेता प्रबन्धक नहीं होते।''

प्रबन्धन कला एवं नेतृत्व के अंतर को निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया हैः

- **प्रबन्धन कला एवं नेतृत्व में अंतर**

अंतर का आधार	प्रबन्धन कला	नेतृत्व
1–अस्तित्व का आधार	संगठित समूह अथवा औपचारिक संगठन	असंगठित समूह अनौपचारिक संगठन
2–मुख्य ध्येय	संगठनात्मक उदेश्यों की प्राप्ति	अनुयायियों की आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं को पूरा करना।
3– अधिकार	औपचारिक अधिकार	अनौपचारिक अधिकार अर्थात अनुयायी स्वतः ही नेता को आदेश देने एवं नेतृत्व करने के अधिकार प्रदान करते हैं।
4–कार्यक्षेत्र	विस्तृत (इसमें सभी प्रबन्धकीय कार्य सम्मिलित हैं)	संकुचित (यह प्रबन्ध का अंग मात्र है)

नेतृत्व का महत्व

किसी संगठन की सफलता में नेतृत्व की मुख्य भूमिका रहती है। प्रभावपूर्ण नेतृत्व के अथवा कोई भी संगठन कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता। क्योंकि संगठन का निर्माण विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक मानव समूह के रुप में किया जाता है, अतः उनका नियंत्रण किया जाना आवश्यक है।

कून्टज तथा ओ'डोनेल ने नेतृत्व के महत्व को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया हैः

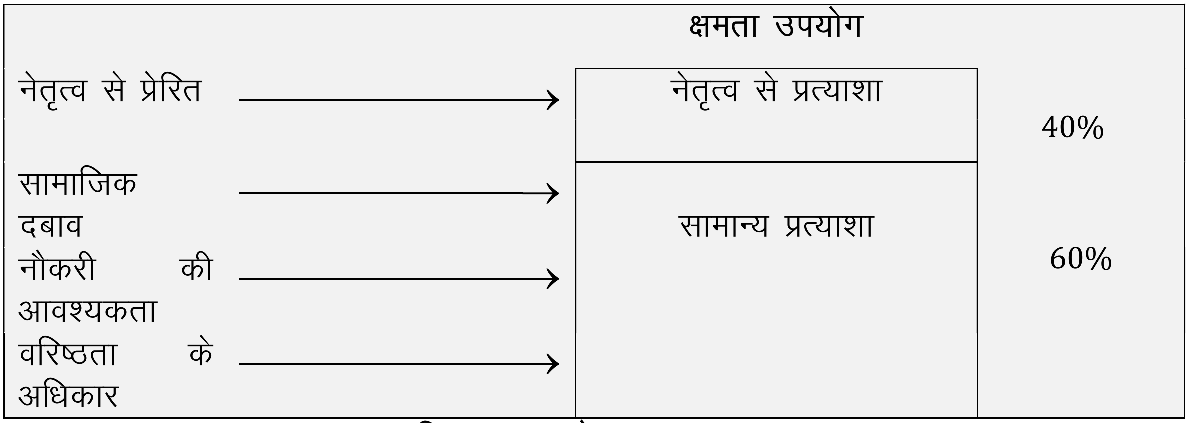

चित्र 12.1 : नेतृत्व का महत्व

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि कर्मचारी लगभग अपनी 60 प्रतिशत क्षमता का प्रयोग तो बिना किसी अतिरिक्त प्रयत्न के ही करते हैं। ऐसा चित्र के नीचे के हिस्से में दिखाया गया है। चित्र के उपर वाले हिस्से से स्पष्ट होता है कि यदि प्रबन्धक को अभिप्रेरित करे तो उनकी 40 प्रतिशत छुपी हुई क्षमता को भी काम में लाया जा सकता है। इस कथन के अनुसार नेतृत्व ही किसी व्यवसायिक संस्था की सफलता की कुंजी है।

नेतृत्व के महत्व निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है:

(i) **लोगों के व्यवहार को प्रभावित करने में सहायक** : एक प्रबन्धक अपनी नेतृत्व योग्यता से अधीनस्थों को प्रभावित करता है। वह उनको इस तरह प्रभाव में लेता है कि वे अपनी पूरी ताकत का प्रयोग संगठन के उद्देश्य प्राप्त करने में लगाते हैं। अच्छे नेता हमेशा अनुयायियों द्वारा बढ़िया परिणाम प्राप्त करते हैं।

(ii) **अनुयायियों की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायकः** एक नेता अपने अनुयायियों से व्यक्तिगत संबंध स्थापित करता है और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करता है। एक मानव समूह किसी विशेष व्यक्ति का अनुसरण क्यों करता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है –क्योंकि वह विशेष व्यक्ति उन्हे सुरक्षा प्रदान करता है, उन्हे धन कमाने के अवसर प्रदान करते हैं, उन्हे कार्य करने के अधिकार देता है तथा उनकी भावनाओं को समझने की कोशिश करता है। इसलिए लोग उसका अनुसरण करते हैं। जो व्यक्ति कर्मचारियों की उपरोक्त बातों पर ध्यान

रखता है, उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। इसके परिणामस्वरुप वे पूरी निष्ठा व उत्साह से कार्य करते है।

(iii) **वांछित परिवर्तनों को लागू करने में सहायकः** आज व्यवसायिक वातावरण तेजी से बदल रहा है। बदलते वातावरण का सामना करने के लिए संगठन में अनेकों परिवर्तन करने पड़ते हैं। क्योंकि लोग पहले से ही नेता के प्रभाव में होते हैं। इसलिए वह परिवर्तन लागू करने के लिए उन्हें आसानी से प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार नेतृत्व योग्यता के बल पर परिवर्तन के संभावित विरोध को समाप्त कर दिया जाता है।

(iv) **झगड़ों को प्रभावी ढंग से हल करने में सहायक** : एक नेता अपने प्रभाव के कारण हर तरह के झगडों (कर्मचारी–कर्मचारी अथवा मालिक–मालिक) को प्रभावी ढंग से हल कर सकता है। नेता हमेशा अपने अनुयायियों को विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। यही कारण है कि वह झगडों की वास्तविकता को सहजता से जान लेता है। इस प्रकार वह झगड़ों का समय पर ही समाधान करके संभावित विपरीत परिणामों को न्यूनतम करने में सहायता करता है।

(v) **अधिनस्थों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायक** : एक नेता अपने अधिनस्थों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायक होता है। वह उन्हें काम करने की आधुनिक पद्धतियों की जानकारी प्रदान करता है। इतना ही नहीं उन्हें इस योग्य बनाता है कि भविष्य में वे भी अच्छे नेता बन सकें।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 नेतृत्व का क्या अर्थ है? प्र.2 क्या नेतृत्व से अधिनस्थों के व्यवहार को प्रभावित किया जा सकता है? प्र.3 क्या एक प्रबंधक को नेता होना आवश्यक है? प्र.4 प्रबंध कला एवं नेतृत्व में क्या अंतर है? प्र.5 नेतृत्व से अधिनस्थों को प्रशिक्षण कैसे मिलता है? प्र.6 क्या अच्छे नेतृत्व से संगठन के लक्ष्य प्राप्त हो सकते हैं?

4.4 एक अच्छे नेता के गुण

सफल नेतृत्व के लिए किसी व्यक्ति में निम्न गुण होने चाहिए:

(i) **शारीरिक विशेषताएँ** : नेतृत्व योग्यता की प्रथम आवश्यकता नेता का शारीरिक, मानसिक रुप से स्वस्थ होना है। जैसा कि स्पष्ट है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ बुद्धि निवास करती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि नेता को शारीरिक रुप से स्वस्थ होना चाहिए, ताकि अनुयायियों पर अच्छा प्रभाव पड़े। मानसिक स्वस्थता से यह अभिप्राय है कि वह स्पष्ट विचारों वाला व्यक्ति हो अर्थात दूसरों की बात को शीघ्रता से समझें और अपनी बात सरलता से दूसरों को समझाए।

(ii) **ज्ञान** : एक नेता को अनेक नई–नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं से सफलतापूर्वक निपटने के लिए बुद्धि एवं पांण्डित्य की जरुरत होती है। बुद्धि एवं पांण्डित्य के बल पर नेता शीघ्र एवं निष्पक्ष निर्णय लेकर हर तरह की समस्या का सामना कर सकता है।

(iii) **सत्यनिष्ठा** : नेता का सत्यनिष्ठ होना अति आवश्यक है। सत्यनिष्ठा का अर्थ नेता की कार्य प्रणाली की सदभावना, सच्चाई, निष्ठा तथा नैतिकता पर आधारित होने से है। नेता, स्वामी व कर्मचारियों के मध्य की कड़ी है। अतः उसे दोनों के प्रति पूरी निष्ठा के साथ कार्य करना चाहिए। उदाहरण के लिए, किसी सम्भावित हानि से स्वामी को पहले से ही अवगत करा देना चाहिए तथा कर्मचारियों के साथ झूठे वायदे नहीं करने चाहिए।

(iv) **पहल–क्षमताः** एक नेता में पहल–क्षमता का गुण होना चाहिए। एक नेता जिसमें यह गुण होता है वह अवसरों की इंतजार नहीं करता बल्कि उन्हे पैदा करता है।

(v) **संदेशवाहन कौशलः** एक नेता का मुख्य कार्य कर्मचारियों व अन्य व्यक्तियों को विभिन्न सूचनाओं, आदेशों, विचारों आदि का संदेशवाहन करना होता है। यह कार्य सन्देश ग्रहण करने वाले व्यक्ति की योग्यता को ध्यान में रखते हुए सरल भाषा में किया जाना चाहिए, ताकि जिस भाव से बात कही जाये उसे उसी भाव से ग्रहण किया जा सके। जिस व्यक्ति में जितनी अधिक संदेशवाहन योग्यता होगी उसकी बातों का प्रभाव अनुयायियों पर उतना ही अधिक एवं शीघ्र होगा।

(vi) **अभिप्रेरण कौशल** : नेतृत्व का अर्थ है अनुयायियो को अपना अनुसरण करने के लिए प्रेरित करना। इससे स्पष्ट होता है कि नेतृत्व के अर्थ को सार्थक बनाने के लिए एक नेता में अभिप्रेरणा योग्यता का पाया जाना जरुरी है। नेता को अभिप्रेरण कर विभिन्न विधियों की जानकारी होनी चाहिए ताकि कर्मचारियों को उनके स्वभाव के अनुसार प्रेरित किया जा सके।

(vii) **आत्म विश्वास** : अपने अनुयायियों का पूर्ण विश्वास जीतने के लिए आत्म–विश्वास का होना आवश्यक है। इसके अभाव में निर्णयों को सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, एक नेता किसी कार्य के बारे में निर्णय लेता है तथा इस निर्णय से वह स्वयं ही संतुष्ट नहीं है, अर्थात उसमें आत्म–विश्वास की कमी है तो निर्णय को सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सकता। आत्म–विश्वास व्यक्ति में साहस की भावना का संचार भी करता है। अतः एक प्रबन्धक सफल नेतृत्व तभी कर सकता है यदि उसमें आत्म–विश्वास का गुण है।

(viii) **निर्णयकता** : नेता में निर्णय लेने व उसे लागू करने की क्षमता होनी चाहिए। नेता ने एक बार जो निर्णय ले लिया है उसमें उस निर्णय पर डटे रहने की निर्भीकता होनी चाहिए। एक साहसी नेता कभी भी सत्यता के पथ से विचलित नहीं होता और न ही अपने विरोधी लोगों से की गई दुर्भावनाओं का शिकार होता है। निडर नेता के साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों पर भी इस गुण का प्रभाव पड़ता है और वे अपने कार्यों का निष्पादन शीघ्रता से करते हैं।

(ix) **सामाजिक कौशल** : एक नेता सामाजिक प्राणी होता है। उससे उम्मीद की जाती है कि वह मानवता का व्यवहार करे। इसका अर्थ है कि उसे कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे उसके अनुयायियों की भावनाओं को ठेस पहुंचे। इसके अतिरिक्त उसे केवल दूसरों को भाषण देने वाला ही नहीं होना चाहिए बल्कि दूसरों से अपेक्षित व्यवहार उसे स्वयं करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.7 एक अच्छे नेता का निर्णायक्ता से क्या संबंध है? प्र.8 क्या एक सफल नेता होने के लिए समाजिक कौशल की आवश्यकता है? प्र.9 सत्यनिष्ठा एक सफल नेता की विशेषता है। संक्षिप्त में समझाइए।

4.5 नेतृत्व की शैलियाँ

नेतृत्व के अंतर्गत अधिनस्थों का अभिप्रेरण इस ढंग से किया जाता है कि वे नेता के व्यवहार से प्रभावित होकर उसका अनुसरण करने लगते हैं और इस प्रकार अधिनस्थों के सहयोग से संस्था के उद्देश्यों को आसानी से पूरा कर लिया जाता है। एक प्रबंधक जिन पद्धतियों पर अपना प्रभाव स्थापित करता है, उन पद्धतियों अथवा विधियों को नेतृत्व कहा जाता है। विभिन्न प्रबंधकों की नेतृत्व शैलियाँ अलग–अलग हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक प्रबंधक की कार्यशैली प्यार के साथ काम लेने की हो सकती है, तो दूसरे प्रबंधक की कार्यशाली डरा–धमका कर कार्य लेने की हो सकती है। वहीं कोई अन्य प्रबंधक मिश्रित रुख अपनाते हुए दूसरों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करता है।। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जिस प्रबंधक की कार्यशैली प्यार से कार्य करवाने की है वह सभी परिस्थितियों में इसी पर अडिग रहेगा, ऐसा नहीं है क्योंकि उसे तो एक समूह का नेतृत्व करना होता है और उस समूह में हर तरह के व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। कभी–कभी कुछ व्यक्तियों से डरा धमका कर भी कार्य करवाना पड़ सकता है। लेकिन जिस पद्धति का वह अधिकतर उपयोग करता है, वह उसकी नेतृत्व–शैली कहलाएगी।

विभिन्न प्रबंधकों द्वारा अपनाई जाने वाली नेतृत्व शैलियों को निम्न रेखाचित्र में स्पष्ट किया गया है:

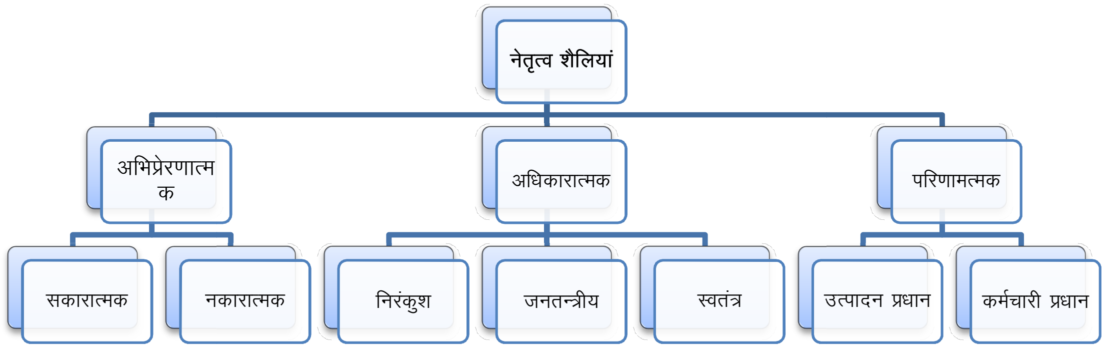

चित्र 12.2 नेतृत्व शैलियाँ

अभिप्रेरणात्मक नेतृत्व शैली

एक नेता द्वारा अपने अनुयायियों के व्यवहार को प्रभावित करने के लिए जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है, अभिप्रेरणात्मक शैली उनमें प्रमुख है। इस पद्धति के अंतर्गत कर्मचारियों की अधिकतम क्षमता का उपयोग करने हेतु उनको अनेक प्रकार से अभिप्रेरित किया जाता है। अभिप्रेरणात्मक नेतृत्व शैली मुख्यतः दो प्रकार की होती हैः

(क) **सकारात्मक नेतृत्व शैली**

जब नेता अपने अनुयायियों को मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनों तरह से संतृष्टि प्रदान करके, संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में उनका सहयोग प्राप्त करता है तो इसे सकारात्मक नेतृत्व शैली कहा जाता है। मौद्रिक प्रेरणा से अभिप्राय वेतन वृद्धि, लक्ष्यों में हिस्सा आदि देने से है, जबकि अमौद्रिक प्रेरणा के अंतर्गत उनकी भावनाओं का आदर करना, निर्णयों में भागीदारी आदि सम्मिलित किया जाता है। इस पद्धति से कर्मचारी पूर्णतः संतुष्ट हो जाते हैं और वे पूरी निष्ठा तथा लगन के साथ कार्य करने लगते हैं। क्योंकि इससे नेता तथा अनुयायियों में मधुर संबंध स्थापित हो जाते है। इसलिए औद्योगिक शांति में सहायता मिलती है।

यह पद्धति जहां एक ओर कर्मचारियों में संतुष्टि की भावना पैदा करती है, वहीं कुछ आलसी कर्मचारी इससे लापरवाह बन जाते हैं। वे लाभ प्राप्त करने के बाद भी काम नहीं करना चाहते। अतः इस विधि का उपयोग नेता द्वारा यह देखते हुए सावधानी से करना चाहिए कि दिये गये लाभों के बदले पूरा काम भी हो रहा है या नहीं।

इस पद्धति के प्रयोग से कर्मचारियों को कुछ समय के लिए तो अभिप्रेरित किया जा सकता है लेकिन इसका लगातार प्रयोग करने से कर्मचारियों का मनोबल गिरने लगता है तथा संस्था के प्रति उनका लगाव धीरे–धीरे कम हो जाता है और अन्ततः औद्योगिक शांति में बाधा आती है।

(रव) **नकारात्मक नेतृत्व शैली**

इस पद्धति के अंतर्गत कर्मचारियों के मौद्रिक तथा अमौद्रिक ढंग से प्रेरित न करके एक विपरीत व्यवहार द्वारा कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है। विपरीत व्यवहार होने के कारण से इसे नकारात्मक शैली कहा जाता है। विपरीत व्यवहार के अंतर्गत अनुयायियों को दंड व भय दिखाकर डराना, कार्य से हटाना, वेतन मे कटौती करना,

निश्चित समय से अधिक समय तक काम लेना, वार्षिक वेतन वृद्धि रोकना आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस पद्धति में प्रबंधक कर्मचारियों से सख्ती के साथ काम लेता है। लापरवाह कर्मचारियों पर विशेष निगाहें रखी जाती है। कार्य में त्रुटि मिलने पर सज़ा दी जाती है।

इस पद्धति के प्रयोग से कर्मचारियों को कुछ समय के लिए तो अभिप्रेरित किया जा सकता है लेकिन इसका लगातार प्रयोग करने से कर्मचारियों का मनोबल गिरने लगता है तथा संस्था के प्रति उनका लगाव धीरे–धीरे कम हो जाता है और अंततः औद्योगिक शांति में बाधा आती है।

उपयुक्त शैली

ऊपर वर्णित सकारात्मक तथा नकारात्मक पद्धतियों में से किस पद्धति का चयन उपयोगी रहेगा, ऐसा निर्धारित करना बहुत कठिन है। दोनों के ही अपने–अपने गुण व दोष है। जहां एक ओर प्रथम पद्धति से मनोबल में वृद्धि होती है, वहीं कुछ कर्मचारी लापरवाह भी हो सकते हैं। इसी प्रकार द्वितीय पद्धति में जहां लापरवाह कर्मचारियों से काम लिया जा सकता है, वहीं इससे लगन में कमी आती है। परिस्थितियों को मद्दे नज़र रखते हुए किसी भी पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः नेताओं द्वारा दोनों पद्धतियों का मिश्रित स्वरुप ही अपनाया जाता है।

अधिकारात्मक नेतृत्व शैली

जैसाकि इस शैली के नाम से ही स्पष्ट है कि नेता द्वारा इस पद्धति में अपनी सत्ता अथवा अधिकार का प्रयोग किया जाता है। सत्ता के प्रयोग का अर्थ यह नहीं है कि नेता अपने अनुयायियों पर हमेशा कोई अनावश्यक दबाव रखता है बल्कि इस श्रेणी में जितनी भी नेतृत्व शैलियाँ आती हैं उनका संबंध नेता के अधिकारों से होता है। कहीं पर नेता अपने अधिकारों का प्रयोग करता है, कहीं पर कुछ अधिकारों का पूरा प्रयोग करता है और कहीं पर अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं करता। नेतृत्व की यह शैली निम्नलिखित रुपों में विख्यात हैः

(क) **निरंकुश नेतृत्व शैली**

इस पद्धति को नेता–केन्द्रित शैली भी कहते हैं। इसके अंतर्गत प्रबंधक सारे अधिकार अपने हाथों में केन्द्रित रखता है तथा कर्मचारियों को बिना किसी परिवर्तन के उसके आदेशों का पालन करते हुए कार्य निष्पादन करना पड़ता है। यदि कोई कर्मचारी कार्य निष्पादन में लापरवाही करता है तो उसे सज़ा दी जाती है। नेता अपना महत्व कम होने के डर के कारण अधिकारों का विकेन्द्रियकरण नहीं करता, परिणामस्वरुप प्रबंध की सफलता का उत्तरदायित्व नेता का ही रहता है। नेता अपने अनुयायियों को लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए दण्ड और भय का वातावरण बनाकर अभिप्रेरित करता है। कर्मचारियों की नौकरी व तरक्की सभी कुछ निरंकुश नेता की इच्छा पर निर्भर करता है। कर्मचारी वर्ग को किसी भी निर्णय के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करने का लेशमात्र भी अधिकार नहीं होता।

निरंकुश नेतृत्व पद्धति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

(i) **औपचारिक संबंध**: यह पद्धति नेता तथा अनुयायियों के मध्य औपचारिक संबंधों का निर्माण करते है। औपचारिक संबंधों से अभिप्राय संगठनात्मक ढांचे के अनुसार व्यक्तियों के संबंधों से है। संगठनात्मक ढांचे में बंधे रहकर ही एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से बातचीत कर सकता है।

(ii) **केन्द्रित सत्ता**: इस पद्धति में प्रबंधक को जो अधिकार एवं दायित्व प्राप्त होते हैं वह उन्हें किसी के साथ बांटने के लिए तैयार नहीं होता। परिणामस्वरुप सभी के अधिकार एक ही व्यक्ति के पास बंध कर रह जाते हैं।

(iii) **एक व्यक्ति के निर्णय**: नेतृत्व की इस शैली में प्रबंधक सारे निर्णय स्वयं अपनी इच्छा से ही लेता है। वह यह मानकर चलता है कि उसे किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता ही नहीं है। अतः प्रबंधक आवश्यकता से अधिक विश्वास में रहकर कर्मचारियों का अभिप्रेरण करने का प्रयास करता है।

(iv) **नकारात्मक अभिप्रेरणा**' नेता अपना महत्व इस बात में समझता है कि जो कुछ वह चाहे, वही काम, उसी तरीके से होना चाहिए। वह अपनी संतुष्टि के लिए डर व धमकी का माहौल बनाकर रखता है। ऐसे माहौल से कर्मचारियों का नकारात्मक अभिप्रेरण होता है, परिणामतः उनके मनोबल में गिरावट आती है।

(v) **कर्मचारियों के बारे में गलत धारणा**: प्रबंधक इस धारणा का शिकार हो जाता है कि कर्मचारी प्यार से काम नहीं करते और उनके लिए कठोर नियंत्रण की आवश्यकता होती है। इसी धारणा के वशीभूत होकर वह केन्द्रिय नेतृत्व पद्धति का सहारा लेता है।

(vi) **कर्मचारियों का व्यवहार**: इस शैली में कर्मचारियों का व्यवहार अपने नेता के प्रति आज्ञाकारिता का होता है। वे वही करते हैं जो करने के लिए उन्हें कहा जाता है तथा अपनी ओर से कुछ भी ज्यादा करने की नहीं सोचते।

(vii) **संदेशवाहन केवल नीचे की ओर**: इस पद्धति में कर्मचारियों के विचार व सुझाव महत्वहीन होते है। इसलिए केवल नीचे की ओर संदेशवाहन होता है। नीचे की ओर संदेशवाहन का अर्थ है कि प्रबंधक अधिनस्थों को अपनी बात तो कहते हैं लेकिन उनकी नहीं सुनते।

(viii) **सख्त तथा नज़दीकी पर्यवेक्षक व नियंत्रण**: संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता है। वास्तविक प्रगति, निर्धारित प्रगति से कम होने पर संबंधित कर्मचारियों को कठोर सज़ा दी जाती है, यहां तक कि उनको नौकरी से भी हटा दिया जा सकता है।

- **लाभ**

निरंकुश नेतृत्व शैली के निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) **शीघ्र व स्पष्ट निर्णय** : सत्ता का केन्द्रियकरण होने के कारण सारे निर्णय एक ही व्यक्ति द्वारा लिए जाते हैं। एक व्यक्ति द्वारा लिए गए निर्णयों में अनावश्यक देरी नहीं होती और वे अपेक्षाकृत स्पष्ट भी होते हैं।

(ii) **सन्तुष्टिपूर्ण कार्य** : क्योंकि इस नेतृत्व में कर्मचारियों द्वारा कार्य निष्पादन कड़े नियंत्रण में किया जाता है इसलिए कार्य की मात्रा तथा किस्म दोनों तरह से कार्य सन्तुष्टिपूर्ण होता है।

(iii) **कम शिक्षित कर्मचारियों के लिए आवश्यक**: यह पद्धति अशिक्षित तथा कम समझ वाले लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। क्योंकि शिक्षा की कमी के कारण उनमें निर्णय लेने की क्षमता शून्य होती है। इस श्रेणी के कर्मचारी केवल कार्य कर सकते हैं, निर्णय नहीं ले सकते हैं।

(iv) **प्रबंधकों के लिए अभिप्रेरणा का स्रोतः** इस पद्धति से प्रबंधकों को अपने काम से ज्यादा सन्तुष्टि मिलती है क्योंकि वे कर्मचारी अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकते हैं। दूसरी ओर, कर्मचारी भी कार्य को अपना कर्तव्य समझ कर करते हैं। इस प्रकार सन्तुष्टि से प्रबंधक अपने को एक सफल प्रबंधक मानने लगते हैं। और इसी बात से अभिप्रेरित होकर भविष्य में वे और अच्छा कार्य करने का प्रयास करते हैं।

- **दोष**

इस पद्धति के निम्नलिखित दोष हैं :

(i) **अभिप्रेरणा की कमीः** इस पद्धति में प्रबंधकों का अभिप्रेरण तो होता ही है लेकिन कर्मचारी वर्ग के मनोबल में गिरावट आती है। ऐसा स्वाभाविक भी है। क्योंकि हर समय डर व भय के वातावरण में काम करने से मनोबल गिरेगा और नेतृत्व के मुख्य उद्देश्य 'अभिप्रेरण' को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(ii) **कम उत्पादकता** : जब कर्मचारियों के मनोबल में गिरावट आयेगी तो उसका सीधा प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है। कर्मचारियों को जो कार्य सौंपा जाता है वे उतना ही करते हैं। अधिक क्षमता के होते हुए भी वे उसका उपयोग नहीं करना चाहते।

(iii) **कर्मचारियों के द्वारा विरोध** : निर्णय में भागीदारी न देकर कर्मचारियों को एक मशीन की भांति बना दिया जाता है। जिस तरह मशीन से जो कार्य चाहे वही करवा सकते हैं, मशीन अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता, इसी प्रकार प्रबंधक, कर्मचारियों से जो चाहे करवा सकते हैं, वे भी अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकते। कर्मचारी इस तरह की नेतृत्व प्रणाली को नीरस मानते है और इसका विरोध करते हैं।

(iv) **पक्षपात की सम्भावना** : सारे अधिकार एक ही व्यक्ति के पास केन्द्रित होने के कारण वह अपनी इच्छा से अपने कुछ चाहने वाले तथा चापलूस लोगों को कम मेहनत का कार्य सौंपकर उन्हें खुश करने की कोशिश करता है। इस तरह के पक्षपात से कर्मचारियों में रोष उत्पन्न होता है। अपने रोष को कर्मचारी कई बार हड़ताल आदि से व्यक्त करते हैं जिससे औद्योगिक शांति को खतरा पैदा हो सकता है।

उपरोक्त लाभ तथा दोषों के आधार पर कहा जा सकता हे कि यह प्रणाली व्यवहारिक नहीं है। नेतृत्व का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों को अभिप्रेरित करते हुए

अनुसरण करवाना होता है। यह उद्देश्य यहां पर पूरा नहीं होता। अतः नेतृत्व शैली अधिक उपयोगी नहीं कही जा सकती।

(ख) **जनतन्त्रीय नेतृत्व शैली**

इस पद्धति को समूह–केन्द्रित नेतृत्व शैली भी कहा जाता है। आधुनिक समय में नेतृत्व की यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। इसके अंतर्गत विभिन्न क्रियाओं से संबंधित निर्णय अकेले प्रबंधक के स्थान पर कर्मचारियों के विचार–विमर्श द्वारा लिए जाते हैं। प्रबंधक अपने अधिनस्थों में पूरी आस्था रखता है और उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझावों में ही थोड़ा–बहुत परिवर्तन करके स्वीकार कर लेता है। नेतृत्व की यह पद्धति अधिकारों के विकेन्द्रियकरण पर आधारित होती है जिसके परिणामस्वरुप कर्मचारियों को अपनी पहल–क्षमता, सृजनशीलता, योग्यता तथा संस्था के प्रति अपना लगाव दिखाने का पूरा मौका मिलता है। इसके अंतर्गत प्रबंधक अपने अधिनस्थों के सुझावों का आदर करने के साथ–साथ उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने का भी प्रयत्न करता है। इस प्रकार कर्मचारी यह अनुभव करने लगते हैं कि वे भी संस्था के एक अंग हैं तथा उनका कुछ महत्व है। इस प्रणाली का उपयोग किये जाने से अच्छे औद्योगिक संबंधों का निर्माण होता है।

- **विशेषताएँ**

जनतन्त्रीय नेतृत्व पद्धति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) **सहयोगपूर्ण संबंधः** इस पद्धति की मुख्य विशेषताएँ प्रबंधकों तथा कर्मचारियों के मध्य सहयोगपूर्ण संबंधों का पता पाया जाना है। निर्णयों में कर्मचारियों की भागीदारी से उनमें स्वाभिमान उत्पन्न होता है, परिणामस्वरुप कर्मचारी हर तरह से सहयोग के लिए तत्पर रहते हैं।

(ii) **धनात्मक अभिप्रेरणः** इस पद्धति में कर्मचारियों को आर्थिक तथा अनार्थिक दोनों साधनों द्वारा अभिप्रेरित किया जाता है। आर्थिक अभिप्रेरण वेतन वृद्धि द्वारा किया जाता है जबकि अनार्थिक अभिप्रेरण अधिक स्वतन्त्रता व अधिकार, अधिक मान व सम्मान आदि से किया जाता है।

(iii) **कर्मचारियों मे आस्था** : प्रबंधक यह मानकर चलते हैं कि कर्मचारी स्वभाव से काम करना चाहते हैं, वे अपना काम रुचि से करते हैं, अपनी जिम्मेवारी स्वीकार करते हैं

तथा सौंपे गए काम को अच्छे से अच्छे ढंग से करने का प्रयत्न करते है। प्रबंधकों का इस तरह का विश्वास का कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करता है।

(iv) **खुला सन्देशवाहन** : इस प्रणाली में प्रबंधकों तथा कर्मचारियों के मध्य खुला सन्देशवाहन होता है। खुले सन्देशवाहन से अभिप्राय दोहर सन्देशवाहन से है अर्थात प्रबंधक अपनी बात भी कहते हैं और कर्मचारियों के सुझावों को भी सहर्ष स्वीकार करते हैं।

(v) **सामूहिक निर्णयन** : प्रबंधकों द्वारा सभी निर्णय अधिनस्थों के सहयोग से लिए जाते हैं।

(vi) **कर्मचारियों में सहयोग का वातावरण** : प्रबंधकों के मित्रतापूर्ण या मित्रपूर्ण व्यवहार के कारण सभी कर्मचारी उत्साह के साथ काम करते हैं। जब सभी में उत्साह होगा तो वे आपस में भी एक–दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार करने लगते हैं।

(vii) **कठोर नियंत्रण की आवश्यकता नहीं** : इस नेतृत्व पद्धति में प्रबंधक अपने अधिनस्थों को स्वयं उत्तरदायित्व स्वीकार करना सिखलाते हैं। उनमें उत्तरदायित्व की भावना पैदा होने से वे स्वयं ही लक्ष्य का निर्धारण करके संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार जब कर्मचारी अपनी इच्छा से काम करने के लिए तैयार हों तो उन पर अधिक नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती।

- **लाभ**

जनतन्त्रीय नेतृत्व शैली के निम्नलिखित लाभ हैं :

(i) **उच्च मनोबल** : इस पद्धति के अंतर्गत प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों का उत्साह ऊँचाइयों को छूने लगता है। दोनों एक–दूसरे को अपना हितैषी समझने लगते हैं। परिणामस्वरुप शिकायतों एवं मन–मुटाव का दौर समाप्त हो जाता है। सबको अपने–अपने कार्य से अधिकतम सन्तुष्टि मिलने लगती है तथा कर्मचारियों की संस्था छोड़ने की दर में कमी आती है।

(ii) **अधिक कुशलता तथा उत्पादकता का निर्माण** : निर्णयों में भागीदार होने के कारण कर्मचारी उनको लागू करने में पूरा सहयोग देते है। इस प्रकार उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। कर्मचारी उत्पादन के नये–नये तरीके खोजने में पहल करते हैं

जिससे उसी काम को कम समय में तथा अच्छे ढंग से किया जा सके, परिणामस्वरुप उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(iii) **शांतिपूर्ण औद्योगिक संबंधः** यह पद्धति औद्योगिक संबंधों को शांतिपूर्ण बनाने में बहुत उपयोगी है। कर्मचारी अपनी ओर से पूरी जिम्मवारी के साथ अधिक–से–अधिक काम करना चाहते हैं। ऐसे वातावरण में जबकि एक पक्ष काम करवाना चाहता है तथा दूसरा पक्ष स्वयं ही उसे करने के लिए तैयार है, संघर्ष के अवसर समाप्त हो जाते हैं। यदि कभी कोई ऐसा मौका आ भी जाए तो आपसी विचार–विमर्श द्वारा उस समस्या का हल निकाल लिया जाता है।

(iv) **परिवर्तनों की शीघ्र स्वीकृतिः** जनतान्त्रिक नेतृत्व के अभाव में कर्मचारी समय–समय पर होने वाले तकनीकी परिवर्तनों को लागू किये जाने का विरोध करते हैं, क्योंकि जिन तरीकों से वे पहले कार्य कर रहे होते हैं उनके वे विशेषज्ञ हो जाते हैं और नई पद्धतियों को बोझ समझने लगते हैं। दूसरी ओर, इस नेतृत्व शैली के अंतर्गत सहयोग भावना होने के कारण परिवर्तनों को सहर्ष स्वीकार कर लिया जाता है।

(v) **रचनात्मक कार्यों के लिए पर्याप्त समय उपलब्धः** इस नेतृत्व शैली में प्रबन्धकों का कार्यभार कम हो जाता है। इस प्रकार बचे हुए समय को वे अन्य रचनात्मक कार्यों मे लगाकर संस्था के विकास तथा विस्तार को संभव बनाते हैं।

- **दोष**

जनतान्त्रिक नेतृत्व के निम्नलिखित दोष हैं:

(i) **शिक्षित अधिनस्थों की आवश्यकता** : इस नेतृत्व पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत अधिनस्थों को निर्णयों में भागीदार बनाया जाता है। तथा कुछ छोटे–छोटे कार्यों को तो पूरी तरह उनके भरोसे छोड़ दिया जाता है। ऐसे सहयोग की आशा केवल शिक्षित कर्मचारियों से ही की जा सकती है। अतः यह पद्धति केवल शिक्षित वर्ग के लिए ही उपयोगी है।

(ii) **निर्णयों में देरी** : जैसाकि स्पष्ट है कि इस पद्धति में निर्णय लेते समय अधिनस्थों से विचार –विमर्श अवश्य किया जाता है। ऐसा करने से यह लम्बी प्रक्रिया बन जाती है, क्योंकि जरुरी नही है कि सभी कर्मचारी एकमत होकर निर्णय दे दें, उनमें मतभेद भी

हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में शीघ्र किए जाने वाले कार्यों मे अनावश्यक देरी होने लगती है।

(iii) **प्रबन्धकों में उत्तरदायित्व की कमीः** कभी–कभी प्रबन्धक अधिनस्थों को कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों में भागीदार बनाकर, अपने उत्तरदायित्व से यह कहकर बचने की कोशिश करते हैं कि ये निर्णय तो अधिनस्थों ने लिये थे और इनके लिए वे ही जिम्मेवार हैं। प्रबन्धकों का यह व्यवहार कर्मचारियों की भावनाओं को ठेस पहुंचाता है।

(iv) **भिन्न–भिन्न प्रकार के कर्मचारीः** एक प्रबन्धक के साथ कार्य करने वाले सभी अधीनस्थ एक स्तर के नहीं होते। कुछ अधीनस्थ चाहते हैं कि उन्हें सारे आदेश स्पष्ट रुप से दिये जाएं तथा उन पर कुछ न छोड़ा जाए ताकि वे अपनी जिम्मेवारी से बच सकें। कुछ अन्य लोग स्पष्ट आदेशों के अभाव में भी कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार इस पद्धति द्वारा एक मिश्रित मानव समूह का नेतृत्व करना संभव नही है।

जनतान्त्रिक नेतृत्व शैली के लाभ तथा दोषों का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि यह प्रणाली ही वास्तव में व्यावहारिक नेतृत्व शैली है। यदि सभी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर इस प्रणाली से भली प्रकार अवगत करा दिया जाये तो इसे और भी उपयोगी बनाया जा सकता है।

(ग) **स्वतंत्र नेतृत्व शैली**

नेतृत्व की इस शैली को निर्बाध स्वरुप या व्यक्ति केन्द्रित प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रणाली में प्रबन्धक अथवा नेता प्रबन्धकीय कार्यों में कम रुचि लेते हैं। तथा अधिनस्थों को उनके स्वयं के भरोसे छोड़ दिया जाता है। इस विचारधारा को अपनाने के पीछे यह धारणा निहित है कि यदि अनुयायियों को अपनी इच्छानुसार निर्बाध रुप से कार्य करने दिया जाए तो वे अधिक परिश्रम से कार्य करते हुए अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करते हैं। इसके अंतर्गत प्रबन्धक केवल व्यापक उद्देश्यों की व्याख्या करके, अधिनस्थों को अपने–अपने लक्ष्यों को स्वयं निर्धारित करने में सहायता प्रदान करते है, इसके अतिरिक्त कार्य निष्पादन के लिए साधन प्रदान करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर कर्मचारियों को सलाह भी देते है। यह पद्धति निरंकुश नेतृत्व शैली के बिल्कुल विपरीत है।

- **विशेषताएँ:**

स्वतन्त्र नेतृत्व शैली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(i) **अधिनस्थों में पूर्ण आस्था:** इस पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसके अंतर्गत प्रबंधक अपने अधिनस्थों को योग्य, सक्रिय, उत्साही तथा जिम्मेदार व्यक्ति के रुप में देखता है और उनमें पूरा विश्वास रखते हैं।

(ii) **स्वतंत्र निर्णय पद्धति:** इस प्रणाली में प्रबंध से संबंधित निर्णय प्रबंधकों के स्थान पर अधिनस्थों द्वारा लिये जाते हैं। वे प्रबंधकों से विचार–विमर्श कर सकते हैं।

(iii) **अधिकारों का विकेन्द्रियकरण:** यह पद्धति विकेन्द्रियकरण के सिद्धान्त पर आधारित है अर्थात प्रबंधक अधिनस्थों में अधिकारों का व्यापक वितरण कर देते है, जिससे हर व्यक्ति अपने लक्ष्य चुनने, उनसे संबंधित योजना बनाने में पूर्णतय: सक्षम हो सके। प्रबंधक केवल समन्वय, निर्देशन तथा सामान्य नियन्त्रण का कार्य ही करते हैं।

(iv) **सहयोगपूर्ण संबंध:** इस पद्धति में प्रबंधक अपने अधिनस्थों में पूरा विश्वास रखते हैं तथा उनको बराबर का सांझेदार समझते हैं। उन्हे कार्य संबंधी पूर्ण अधिकार तथा दायित्व सौंपे जाते है। परिणामस्वरुप दोनों में सहयोग की भावना जागृत होती है।

(v) **अधिकारों द्वारा अभिप्रेरणा:** अधिनस्थों को अपने कार्य करने के लिए ज्यादा अधिकार देकर प्रोत्साहित किया जाता है। अधिकार प्राप्ति से उनमें स्वाभिमान की भावना उत्पन्न होती है जो उन्हें अभिप्रेरित करती है।

(vi) **दोहरा सन्देशवाहन:** इस पद्धति में सभी कर्मचारी अपने–अपने कार्यों का निष्पादन करने के लिए आपस में विचार–विनिमय करते है तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रबंधकों की सेवाएं भी उपलब्ध रहती हैं।

(vii) **स्वय संचालन, पर्यवेक्षण व नियंत्रण:** एक बार उद्देश्यों की व्याख्या कर देने के बाद प्रबंधक का कार्य तो केवल विपरीत परिस्थितियों में हस्ताक्षेप करने का ही रह जाता है। कर्मचारियों का पर्यावेक्षण तथा नियन्त्रण स्वयं उनके द्वारा ही किया जाता है।

(viii) **कर्मचारियों में दायित्व की भावना:** इस पद्धति के अंतर्गत कार्य करने वाला हर व्यक्ति अपनी जिम्मेवारी को अच्छी तरह समझता है और उसको पूरा करने के लिए हर सम्भव प्रयास करता है।

- **लाभ**

स्वतन्त्र नेतृत्व शैली के निम्नलिखित लाभ हैं:

(i) **अधिनस्थों में आत्मविश्वास का विकासः** जब कार्य के सभी अधिकार कर्मचारियों को सौंप दिये जाते है तो वे स्वयं निर्णय लेने के अभ्यस्त हो जाते है जिससे उनमें आत्म–विश्वास जागृत होता है। भविष्य में वे विभिन्न क्रियाओं का निष्पादन और भी कुशलता से करने लगते हैं।

(ii) **उच्च स्तरीय अभिप्रेरण**: जब प्रबंधक द्वारा अधिनस्थों में विश्वास व्यक्त करते हुए सब कुछ उन्हें सौंप दिया जाता है तो वे स्वयं को संस्था का एक महत्वपूर्ण अंग समझने लगते हैं इस प्रकार उन्हें महसूस होने लगता है कि वे संस्था के कर्मचारी नहीं बल्कि स्वंय संस्था है इस विचार के उत्पन्न होने के कारण उनकी अभिप्रेरणा में कोई कमी नहीं रह जाती।

(iii) **संस्था के विकास एवं विस्तार में सहायकः** जिस संस्था में नेतृत्व की इस पद्धति का उपयोग किया जाता है उसका विकास व विस्तार चरम सीमा पर होता है। इसका मुख्य कारण है प्रबंधकों के पास संस्था के विकास व विस्तार की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए पर्याप्त समय होना।

- **दोष**

नेतृत्व की इस शैली में निम्नलिखित दोष भी हैं:

(i) **समन्वय में कठिनाईः** प्रबंधकों द्वारा नज़दीकी पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण न किये जाने के कारण सभी कर्मचारी अपनी इच्छा से कार्य करते हैं। कुछ विपरीत दृष्टिकोण वाले कर्मचारी दूसरे व्यक्तियों के लक्ष्य प्राप्ति में बाधक बन जाते है। ऐसे व्यक्ति न तो स्वयं काम करते हैं और न ही दूसरों को काम करते हुए देख सकते हैं। इस प्रकार के आपसी व्यवहार में समन्वय स्थापित करना प्रबंधक के लिए कठिन होता जाता है।

(ii) **प्रबंधकीय पद महत्वहीन होना**: इस नेतृत्व प्रणाली में प्रबंधक का पद महत्वहीन हो जाता है क्योंकि न तो वह कोई योजना बनाता है, न ही कोई निर्णय लेता है और न ही निन्त्रण रखता है।

(iii) **केवल अधिक शिक्षित लोगों के लिए उपयुक्त**: यह प्रणाली केवल उसी स्थिति में उपयोगी है जबकि प्रत्येक कर्मचारी पूर्णतयः शिक्षित हो, ताकि उसको कार्यभार पूरे

विश्वास के साथ सौंपा जा सके। अशिक्षित तथा कम शिक्षित लोगों को नेतृत्व करने के लिए यह पद्धति सर्वथा ठीक नहीं है।

यह पद्धति जहां एक ओर कर्मचारियों में सहयोग तथा स्वाभिमान की भावना को जन्म देती है वहीं, दूसरी ओर सभी परिस्थितियों में इसे लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह प्रणाली केवल वहीं उपयोगी है जहां शिक्षित लोगों का नेतृत्व किया जाना हो। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके प्रयोग से नेता अथवा प्रबंधक का पद महत्वहीन हो जाता है। अतः निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में यह नेतृत्व पद्धति व्यवहारिक नहीं है।

- **उपयुक्त शैली**

  अधिकारात्मक नेतृत्व शैली में वर्णित की गई तीनों पद्धतियों में से किस पद्धति का उपयोग किये जायें, यह प्रत्येक प्रबंधक के अपने ज्ञान, व्यवहार तथा परिस्थितियों की मांग पर निर्भर करता है। किसी एक परिस्थिति में कोई एक शैली उपयोगी हो सकती है तो किसी अन्य परिस्थिति में कोई दूसरी। प्रायः मानव स्वभाव न तो अधिक कठोर नियंत्रण में कार्य करने का होता है और न ही बिना नियंत्रण के। उसे तो बीच का रास्ता चाहिए जो जनतान्त्रिक नेतृत्व प्रणाली द्वारा ही सम्भव है। अतः इस निष्कर्ष के रुप में कह सकते हैं कि आधुनिक युग में जनतान्त्रिक नेतृत्व शैली ही अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

- **निरंकुश, जनतान्त्रिक तथा स्वतन्त्र नेतृत्व शैलियों में अन्तर**

  नेतृत्व की तीनों ही शैलियों की अलग–अलग विशेषताएँ हैं तथा इनके पक्ष व विपक्ष में भी भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं। इनके अन्तर को निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है।

नेतृत्व शैलियों में अन्तर

अन्तर का आधार	निरंकुश नेतृत्व	जनतान्त्रिक नेतृत्व	स्वतन्त्र नेतृत्व
1. अधिकारों का बंटवारा	कार्य निष्पादन से संबंधित सभी अधिकार प्रबंधक के पास केन्द्रित रहते हैं।	आवश्यकतानुसार कुछ अधिकारों को अनुयायियों में हस्तांतरित कर दिया जाता है।	अधिकांश अधिकारों को अनुयायियों में हस्तांतरित कर दिया जाता है।
2. नीतियों का निर्धारण	नितियों का निर्धारण पूर्णतः प्रबंधक अथवा नेता द्वारा किया जाता है।	कर्मचारियों से विचार–विमश के बाद ही नीतियां निर्धारित की जाती हैं।	नीति निर्धारण का कार्य अनुयायियों को सौंप दिया जाता है तथा नेता का हस्तक्षेप न्यनूतम होता है।
3. व्यक्तिगत कार्य निर्धारण	अनुयायियों के कार्य का निर्धारण नेता स्वयं करता है।	अनुयायी चाहे तो नेता की मदद ले सकते हैं अन्यथा वे स्वतन्त्र होते हैं।	अनुयायियों के कार्य निर्धारण में नेता का हस्तक्षेप शून्य होता है।
4. नियंन्त्रण की सीमा	कठोर नियन्त्रण।	आवश्यकतानुसार हल्के नियन्त्रण का प्रयोग।	स्वतः नियंत्रित प्रणाली होने के कारण नेता का नियंत्रण नहीं के बराबर।
5. सन्देशवाहन का प्रकार	सन्देशवाहन केवल ऊपर से नीचे की ओर चलता है।	सन्देशवाहन ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर, दोनों तरफ चलता है।	स्वतन्त्र संदेशवाहन।
6. अभिप्रेरण	ऋणात्मक अभिप्रेरण	धनात्मक अभिप्रेरण।	उच्च स्तरीय अभिप्रेरण।
7. लोकप्रियता	यह शैली प्राचीन प्रबंध व्यवस्था में लोकप्रिय थी।	यह शैली आधुनिक प्रबंध व्यवस्था में सर्वाधिक लोकप्रिय।	यह आधुनिक प्रबंध व्यवस्था में कम लोकप्रिय है।

परिणामत्मक नेतृत्व शैली

नेतृत्व की इस पद्धति में नेता अथवा प्रबंधक द्वारा क्रियाओं के परिणामों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इस पद्धति के अंतर्गत संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दो तर्क दिये गये है। प्रथम, तर्क के अनुसार, अनुयायियों के उत्थान पर ध्यान केन्द्रित करते हुए यह

मान लिया जाता है कि ऐसा करने से लक्ष्य स्वयं ही प्राप्त होंगे। दूसरे तर्क के अनुसार, अनुयायियों की ओर अधिक ध्यान न देकर उत्पादन की नई–नई तकनीकों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इस प्रकार परिणात्मक नेतृत्व शैलियाँ दो प्रकार की होती हैं, जिसका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है:

(I) कर्मचारी प्रधान नेतृत्व शैली

इसके अंतर्गत नेता द्वारा अपने अनुयायियों को सर्वोपरि माना जाता है। यह शैली इस धारणा पर आधारित है कि यदि कर्मचारियों के साथ मानवता पूर्ण व्यवहार करते हुए उनकी भावनाओं का आदर किया जाये, कार्य की दशाओं में सुधार किया जाये तो वांछित परिणाम स्वतः ही प्राप्त हो जायेंगे। इस तरह का व्यवहार अथवा सोच कर्मचारियों को एक जुट होकर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है।

क्योंकि इस पद्धति में कर्मचारियों की भावनाओं को समझने पर अधिक जोर दिया गया है, इसलिए नेता का मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञ होना आवश्यक है। यदि नेता इस क्षेत्र को पूरी जानकारी रखता है तो वह समय से ही अनुयायियों की इच्छाओं को जान लेगा और सफल नेता सिद्ध होगा। दूसरी ओर, यह प्रणाली वहां उपयोगी नहीं है जहां मानव समूह के अधिक लोग लापरवाह तथा गैर जिम्मेवार हैं।

क्योंकि इस प्रद्धति में कर्मचारियों की भावनाओं को समझाने पर अधिक जोर किदया गया है, इसलिए नेता का मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञ होना आवश्यक है। यदि नेता उस क्षेत्र का पूरा ज्ञान
रखता है तों वह समय से ही अनुयायियों की इच्छाओं को जान लेगा और सफल नेता सिद्ध होगा। दूसरी ओर, यह प्रणाली वहां उपयोगी नहीं है जहां मानव समूह के अधिक लोग लापरवाह तथा गैर जिम्मेवार हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 नेतृत्व शैली से क्या अभिप्राय है?
प्र.11 रिक्त स्थान भरिए :
(i) नेता द्वारा अपने अनुयायियों को सर्वोपरि मानना .... नेतृत्व शैली है ।
(ii) जनतान्त्रिक नेतृत्व शैली को ....शैली भी कहते हैं।

4.6 परिवर्तन का प्रबंधन

परिवर्तन संसार का नियम है। जन्म, बचपन, जवानी, बुढापा/धूप–छांव/ऋतु–परिवर्तन आदि कुछ ऐसे सत्य हैं जिन्हें कोई टाल नहीं सकता। अर्थात संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है। परिवर्तनशलता को जानना इतना महतवपूर्ण नहीं है जितना कि अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए परिवर्तनों के साथ समझौता करना। यह तो हमने परिवर्तन के संबंध में संसारिक बात की। यहां हमारा उद्देश्य परिवर्तन शब्द का अध्ययन संगठन के संदर्भ में करना है। प्रायः हम देखते हैं कि एक व्यवसाय के जीवन में भी अनेक परिवर्तन आते रहते हैं। उदाहरण के लिए, उत्पादन की नई विधियां विकसित होना, सरकारी नीतियों में परिवर्तन, मंदीकाल, तेजीकाल, कर्मचारियों कर पदोन्नति व स्थानान्तरण, बाजार में प्रतियोगियों का प्रवेश, बिक्री में कमी, लाभों में कमी आदि। संस्था तथा संस्था में काम करने वाले व्यक्तियों पर इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है। अतः संस्था व कर्मचारियों दोनों के अस्तित्व का बचाए रखने के लिए इन परिवर्तनों से समझौता किया जाना जरुरी होता है।

परिवर्तन का अर्थ

''जब हमारी पूर्व–स्थिति में किसी भी प्रकार की भिन्नता आती है तो इसे परिवर्तन कहते हैं।'' उदाहरण के लिए–एक कारखाने में पहले जो काम साधारण मशीनों से किया जाता था वही काम अब इलेक्ट्रानिक मशीनों से किया जाने लगा है। इससे कारखाने में काम करने वाले लोगों की पूर्व –स्थिति में परिवर्तन आ जाएगा। अतः जब विद्यमान संगठन संरचनाः संगठन के उद्धेश्यों/ नीतियों/कार्य–विधियां, उत्पादन विधिः कर्मचारियों के पद के स्तर आदि में भिन्नता लाई जाती है तो परिवर्तन होता है।

- **परिवर्तन का विरोध**

  संगठन के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए परिवर्तन करना आवश्यक होता है लेकिन कई बार इस तरह के परिवर्तन का कुछ लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। परिणामतः वे इसे पसंद नहीं करते और इसका विरोध करते हैं। विरोध की आशंका उस समय अधिक होती है जब परिवर्तन से कर्मचारियों का कार्यभार बढ़ता हो, वेतन में कमी आती हो अथवा नौकरी से हटाए जाने की संभावना हो।

- **परिवर्तन के प्रबंध का अर्थ**

  जब संगठन में कोई परिवर्तन किया जाता है तो उसका कोई कारण अवश्य होता है। परिवर्तन के कारण आंतरिक व बाहरी दोनों हो सकते हैं। (इन कारणों का वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है) संक्षेप में कहा जा सकता है कि कारण कुछ भी हों परिवर्तन तो करना ही होता है। यहां मुख्य प्रश्न यह है कि परिवर्तन के विरोध से कैसे बचा जाए? यह काम प्रबंध द्वारा किया जा सकता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि, ''प्रस्तावित परिवर्तन को निर्विरोघ लागू करने की एक निश्चित प्रक्रिया को परिवर्तन का प्रबंध कहते हैं।''

  डा. पी. सामभैया के अनुसार, ''वह प्रक्रिया जिसके द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन को लागू किया जाता है परिवर्तन का प्रबंध कहलाता है।''

टूल बाक्स – 2
परिवर्तन का प्रबन्ध इसका अभिप्राय परिवर्तनों को निर्विरोध लागू करने की प्रक्रिया से है

परिवर्तन की प्रकृति

परिवर्तन की प्रकृति को निम्नलिखित विवरण से समझा जा सकता है:

(i) **परिवर्तन प्रकृति का नियम है:** प्रकृति ने इस संसार को जो कुछ भी दिया है सब कुछ परिवर्तनशील है। मनुष्य को परिवर्तित परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार अपने–आप को समायोजित करना पड़ता है। ऐसा न करने की स्थिति में उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। जिस प्रकार एक मुनष्य को परिवर्तन का सामना करना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार एक व्यवसायिक इकाई को भी अनेक आंतरिक व बाहरी शक्तियां परिवर्तन के लिए मजबूर करती हैं। अतः परिवर्तन अचानक ही नहीं हो जाते बल्कि यह तो एक नियम है जिसके अनुसार इन्हें होनी ही होता है।

(ii) **परिवर्तन का मनुष्य द्वारा विरोध होता है:** परिवर्तन अवश्यमेव होते हैं और यह भी सत्य है कि प्रायः लोग उनका विरोध करते हैं। परिवर्तन से एक कम्पनी के कर्मचारियों के कार्य–स्थान, पद, बॉस, कार्य–विधि, मित्रों का समूह, पारिश्रामिक आदि

में बदलाव आ सकता है। अर्थात उन्हें एक नए वातावरण में काम करने पर मजबूर होना पड़ता है। लेकिन मानव स्वभाव ऐसा होता है कि वह पुराने वातावरण में रहना चाहता है। परिवर्तन का विरोध श्रमिकों, निम्नस्तरीय प्रबंधकों, मध्यस्तरीय प्रबंधकों, व उच्चस्तरीय प्रबंधकों सभी द्वारा किया जा सकता है।

(iii) **परिवर्तन विकास की ओर ले जाता है:** परिवर्तन की प्रकृति विकास की ओर ले जाने की होती है। इसका अर्थ यह है कि जब भी कोई परिवर्तन होता है वह नयापन लोगों के लिए होता है। यहां पर एक प्रश्न यह उठता है कि जब परिवर्तन से विकास होता है तो फिर लोग उसका विरोध क्यों करते हैं? इसका उत्तर यह है कि जरुरी नहीं कि परिवर्तन से सभी को लाभ हो। हो सकता है, परिवर्तन से कुछ लोगों को बहुत लाभ हो, कुछ को कम और कुछ को हानि। इस प्रकार जिनको हानि होगी वे तो परिवर्तन का विरोध करेंगे ही।

(iv) **परिवर्तन एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है:** परिवर्तन एक प्रक्रिया है क्योंकि जब भी परिवर्तन किया जाता है तो विभिन्न चरणों से गुजरने पर ही परिवर्तन का काम पूरा होता है। प्रक्रिया होने के साथ–साथ यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया भी है। एक व्यवसायिक इकाई गतिशील वातावरण में जन्म लेती है और विकसित होती है। अतः जैसे ही एक परिवर्तन को लागू करने का काम पूरा होता है तभी कोई दूसरी समस्या आ जाती है और पुनः कोई और परिवर्तन करना पड़ता है।

(v) **परिवर्तन में अनिश्चितता का तत्व होता है:** परिवर्तन भविष्य के लिए किया जाता है और भविष्य अनिश्चित होता है। परिणामस्वरुप परिवर्तन के परिणाम भी अनिश्चित होते हैं। उनके बारे में पूरी गारंटी के साथ पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। अतः परिवर्तन में अनिश्चितता का तत्व निहित होता है।

(vi) **परिवर्तन के लिए परिवर्तन एजेंट की जरुरत होती है:** परिवर्तन कार्यक्रम कोई स्वचालित प्रक्रिया नहीं है। इसे लागू करने के लिए अनेक प्रयास करने पड़ते हैं। इसीलिए यह प्रक्रिया पूरी करने के लिए एक विशेष व्यक्ति की जरुरत होती है जिसे एजेंट कहते हैं। छोटे परिवर्तनों के लिए संबंधित प्रबंधक ही परिवर्तन एजेंट का काम करता है जबकि बड़े परिवर्तनों के लिए उच्च प्रबंधकों अथवा बाहरी पेशेवर सलाहकारों की मदद ली जाती है।

(vii) **परिवर्तन दो शक्तियों के कारण होता है**: परिवर्तन की प्रकृति दो शक्तियों से प्रभावित होने की है– आंतरिक एवं बाहरी। उदाहरण के लिए, यदि कम्पनी अपने दो विभागों को मिलाकर एक नया विभाग बना देती है तो यह आंतरिक परिवर्तन है। इसके विपरीत यदि प्रतियोगी कम्पनी के बाजार में प्रवेश करने के कारण पुरानी कम्पनी को अपनी मूल्य नीति में परिवर्तन करना पड़ता है तो वह बाहरी परिवर्तन है।

(viii) **परिवर्तन के दो प्रकार हैं**: कारण कुछ भी हो परिवर्तन दो स्वरुपों में किया जा सकता है। कार्य संबंधी अथवा संगठन संबंधी। आधुनिक मशीनों की स्थापना एक कार्य संबंधी परिवर्तन है जबकि विभागों की संख्या कम या अधिक करना एक संगठन संबंधी परिवर्तन है।

परिवर्तन के कारण

प्रत्येक संगठन में अनेक प्रकार के परिवर्तन करने पड़ते हैं। परिवर्तनों के अनेक कारण हो सकते हैं। सुविधा की दृष्टि से इन्हें निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है:

आंतरिक तत्वः

निम्नलिखित आंतरिक कारणों से संगठन में परिवर्तन हो सकते हैं:

(i) **प्रबंधकीय** : संगठन में परिवर्तन का प्रथम आंतरिक कारण प्रबंधकों से संबंधित है। इसका अर्थ यह है कि जैसे ही प्रबंधक की स्थिति में किसी प्रकार की भिन्नता आती है उससे संगठन में भी परिवर्तन करना पड़ता है। प्रबंधकों की स्थिति में परिवर्तन के उदाहरण इस प्रकार हैं: – पदोन्नति, स्थानान्तरण, अवकाश ग्रहण करना, छंटनी आदि। प्रत्येक प्रबंधक की कार्यशैली अलग होती है। जैसे ही किसी विभाग के प्रबंधक की स्थिति में भिन्नता आती है वहां परिवर्तन महसूस होने लगता है।

(ii) **विकास संबंधीः** किसी भी संगठन में विकास के लिए उसमें गतिशीलता को बनाए रखना जरुरी है: समझदार प्रबंधक संगठन में किसी न किसी रुप में परिवर्तन करते रहते हैं। इससे संगठन में काम करने वाले लोग परिवर्तन के अभ्यस्त हो जाते हैं। इसका लाभ यह होता है कि जब भी किसी बड़े परिवर्तन की आवश्यकता पड़े तो कर्मचारी उसका विरोध नही करते। विकास संबंधी कारणों में उत्पादन विधि में

परिवर्तन से बाजारों की खोज, प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(iii) **संगठनात्मकः** कभी–कभी वर्तमान संगठन व्यवस्था निष्क्रिय हो जाती है। ऐसी स्थिति में वांछित परिणम प्राप्त नहीं होते। संगठन व्यवस्था में कमजोरी के कारण इस प्रकार हैं

- प्रबंधकीय स्तरों का आवश्यकता से कम या अधिक होना
- प्रबंध का विस्तार बहुत कम या बहुत अधिक होना
- विभागों की संख्या आवश्यकता से कम या अधिक होना
- प्रभावी संदेशवाहन प्रणाली न होना
- विभिन्न विभागों में परस्पर अच्छे संबंध का न होना
- प्रभावी निर्णयन प्रक्रिया का न होना
- रेखा एवं स्टॉक अधिकारियों में लगातार संघर्ष रहना आदि।

इन संगठनात्मक कारणों से संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(ख) **बाह्य तत्व**

अनेक बाह्न तत्व ऐसे हैं जो संगठन को मजबूर करते हैं कि वे संगठन अपने उद्देश्यों, नीतियों, संरचना आदि में परिवर्तन करे। ये तत्व निम्नलिखित हैंः–

(i) **आर्थिक** : आर्थिक तत्वों का संगठन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरुप संगठन में अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं। मुख्य आर्थिक तत्वों के उदाहरण इस प्रकार हैंः

(क) **मंदीकाल व तेजीकरणः** मंदीकाल व तेजीकरण किसी भी अर्थव्यवस्था की दो महत्वपूर्ण अवस्थाएं होती हैं। मंदीकाल में मांग में कमी तथा इसके विपरीत तेजीकाल में मांग में वृद्धि को ध्यान में रखकर संगठन में अनेक परिवर्तन किए जाते हैं।

(ख) **राष्ट्रीय आय में परिवर्तनः** राष्ट्रीय आय में परिवर्तन से लोगों के जीवन–स्तर में परिवर्तन होता हैः जिसका प्रभाव वस्तुओं की मांग पर पड़ता है। विभिन्न प्रकार की मांग को पूरा करने के लिए अनेक नए उत्पाद तैयार करने होते हैं। तथा नई उत्पाद विधियों का प्रयोग करना होता है। इससे निश्चित रुप में संगठन में परिवर्तन करने होते हैं।

(ग) **शहरीकरणः** शहरीकरण का सीधा प्रभाव उद्योगों पर पड़ता है। गांव से शहरों की ओर आने वाले लोगों की रुचियों के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन करना होता है।

(ii) **सरकारीः** सरकारी तत्व के अंतर्गत निम्न परिवर्तनों का सम्मिलित किया जाता है– राष्ट्रीय अथवा राज्य स्तर पर सरकार में परिवर्तन, सरकार की आर्थिक नीतियों में परिवर्तन, सरकार की आयात–निर्यात नीति में परिवर्तन, कर–नीति में परिवर्तन, सरकार की लाईसेंस नीति में परिवर्तन, आदि। इन सभी सरकारी तत्वों का संगठन पर प्रभाव पड़ता है और निश्चित रुप से संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(iii) **तकनीकीः** किसी भी देश में हो रहे तकनीकी विकास में संगठन दो तरीके से प्रभावित होता है। प्रथम, उत्पादन की नई विधियां एवं नई–नई मशीनों की खोज की जाती है। इससे श्रमिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगता है। अनपढ़ श्रमिकों का स्थान शिक्षित श्रमिक लेने लगते हैं। द्वितीय– तकनीकी विकास के कारण श्रमिकों की छंटनी की संभावना से श्रम –समस्या विराट रुप धारण करने लगती है। अतः एक ओर श्रमिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन तथा दूसरी ओर छंटनी के डर से उत्पन्न समस्या के कारण संगठन में अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं।

(iv) **सामाजिक** : रीति–रिवाज में परिवर्तन, लोगों की बढ़ती क्रय–शक्ति, उपयोग व्यवहार में परिवर्तन, आदि ऐसे सामाजिक परिवर्तन हैं जिनका संगठन पर प्रभाव पड़ता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.12 एक संगठन में विशिष्टीकरण का क्या अर्थ है? प्र.13 क्या परिवर्तनों को रोका जा सकता है? प्र.14 परिवर्तन के मूल कारण क्या हैं?

परिवर्तन के प्रकार

हमने देखा कि संगठन में परिवर्तन किए जाने के अनेक आंतरिक व बाह्य कारण हो सकते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि इन आंतरिक व बाह्य तत्वों से प्रभावित होकर संगठन में कितने प्रकार के परिवर्तन किए जा सकते हैं। संगठन में किए जाने वाले परिवर्तनों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(क) कार्य संबंधी परिवर्तन

कार्य संबंधी परिवर्तन मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के होते हैंः

(i) **कार्य–विधि में परिवर्तनः** दिन–प्रतिदिन होने वाले अनुसंधानों के कारण उत्पादन व अन्य कार्य करने की नई–नई विधियों का विकास हो रहा है। संस्था के विकास के लिए व आधुनिकीकरण का लाभ उठाने के लिए इन विधियों को लागू किया जाता है। इस प्रकार संगठन में यह पहली प्रकार का कार्य संबंधी परिवर्तन होता है।

(ii) **जॉब में परिवर्तनः** कभी–कभी एक बड़ी जॉब अथवा क्रिया को अनेक छोटी–छोटी क्रियाओं में विभक्त करने की आवश्यकता महसूस होती है तो कभी इसके विपरीत। इससे कार्य संबंधी परिवर्तन होता है।

(iii) **मशीनों में परिवर्तनः** आज निरंतर हो रहे तकनीकी परिवर्तनों के कारण हस्तचलित मशीनों का स्थान स्वचालित मशीनों ले रही हैं। ऐसा परिवर्तन करने से जहां एक ओर अनेक लाभ हैं वहीं इसकी एक बहुत बड़ी हानि भी है। वह है छंटनी के डर से कर्मचारियों द्वारा किया जाने वाला विरोध।

(iv) **उत्पादों में परिवर्तनः** बढ़ते जीवन स्तर, शहरीकरण आदि के कारण आज नये–नये उत्पादों की मांग की जा रही है। प्रबंधक को इस मांग के बारे में सचेत रहना पड़ता है और आवश्यकता पड़ने पर अपने पुराने उत्पादों को या तो बदलना पड़ता है अथवा उत्पाद सूची में ही कुछ नये उत्पाद जोड़ने पड़ते हैं।

(v) **प्रशिक्षण पद्धति में परिवर्तनः** आवश्यकता पड़ने पर प्रशिक्षण पद्धति में परिवर्तन किया जा सकता है। नई कार्य–विधि एवं नई–नई मशीनें आ जाने के कारण प्रशिक्षण आधुनिक पद्धतियों द्वारा दिया जाना आवश्यक हो गया है।

(ख) संगठन संबधी परिवर्तनः

संगठन संबंधी परिवर्तन मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :

(i) **संगठन संरचना में परिवर्तनः** संगठन संरचना का अर्थ संगठन में विभिन्न स्तरों पर स्थापित पदों से है। कम्पनी के आकार के अनुसार इन पदों की संख्या कम अथवा अधिक की जा सकती है। उदाहरण के लिए, एक कम्पनी में क्रय विभाग, विक्रय विभाग, विज्ञापन विभाग, उत्पादन विभाग, कर्मचारी विभाग एवं वित्त विभाग, कुल छः विभाग हैं। गहन अध्ययन के बाद ऐसा महसूस किया गया कि विज्ञापन विभाग की

अलग जरुरत नहीं है बल्कि इसे विक्रय विभाग के साथ मिलाया जा सकता है। इस प्रकार संगठन संरचना में अंतर आ जाएगा।

(ii) **कर्मचारियों की स्थिति में परिवर्तनः** आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न पदों पर काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या, पद व स्तर में परिवर्तन किया जा सकता है ऐसा पदोन्नति, स्थानान्तरण, छंटनी आदि द्वारा किया जाता है।

(iii) **अधिकारों की मात्रा में परिवर्तनः** काम को कुशलतापूर्वक ढंग से करवाने के लिए उच्च अधिकारी अपने अधिनस्थों को अधिकार सौपते हैं जिसे अधिकारों का भारार्पण कहते हैं। जब अधिकारियों के भारार्पण की मात्रा को बढ़ा दिया जाता है तो वह विकेन्द्रियकरण का रुप ले लेता है।

(iv) **उद्देश्यों मे परिवर्तनः** आंतरिक व बाहरी वातावरण से प्रभावित होकर कभी–कभी संस्था को अपने उद्देश्यों में परिवर्तन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नीतियों में भी परिवर्तन किया जाता है।

(v) **संदेशवाहन श्रृंखला में परिवर्तनः** संदेशवाहन श्रृंखला औपचारिक एवं अनौपचारिक दो प्रकार की होती है। औपचारिक संदेशवाहन के साथ–साथ अनौपचारिक संदेशवाहन भी जरुरी होता है। आवश्यकतानुसार किसी एक या दोनों पर अधिक जोर दिया जा सकता है। इसके साथ ही संदेशवाहन के माध्यमों (लिखित, मौखिक व सांकेतिक) में भी परिवर्तन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पहले मौखिक संदेशवाहन का अधिक प्रयोग किया जाता था लेकिन अब लिखित संदेशवाहन को अधिक प्रचलन में लाया जाता है।

(vi) **प्रोत्साहन पद्धति में परिवर्तनः** प्रोत्साहन की मौद्रिक व अमौद्रिक दो पद्धतियां होती हैं। माना कि एक कम्पनी में पहले दोनों पद्धतियों को प्रयोग में लाया जा रहा था लेकिन कम्पनी ने यह निर्णय लिया है कि केवल मौद्रिक प्रोत्साहन पद्धति का ही प्रयोग किया जाएगा। इस प्रकार संगठन में परिवर्तन आ जाएगा।

नियोजित परिवर्तन की प्रकिया

जैसा कि स्पष्ट है कि अनेक आंतरिक एवं बाहरी तत्व ऐसे हैं जो किसी न किसी रुप में संगठन को प्रभावित करते रहते है। इसी प्रभाव के कारण संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं। वैसे भी बदलते वातावरण के साथ बदलाव लाने में ही समझदारी है। दूसरी ओर, परिवर्तन के विरोध की आशंका से भी इंकार नहीं किया जा सकता। परिवर्तन का उद्देश्य किसी समस्या को हल करना होता है न कि विरोध के रुप में एक नई समस्या को जन्म देना। अब प्रश्न यह उठता है कि विरोध से बचते हुए परिवर्तन को कैसे लागू किया जाए। इस समस्या से बचा जा सकता है, यदि परिवर्तन को ठीक प्रकार प्रबंध कर लिया जाए। अन्य शब्दों में, यदि परिवर्तन को नियोजित ढंग से लागू किया जाए तो विरोध को समाप्त नही ंतो न्यूनतम अवश्य किया जा सकता है। अब पुनः प्रश्न यह उठता है कि यह नियोजित ढंग क्या है। परिवर्तन का नियोजित ढंग है ''नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया''। यदि इस प्रक्रिया का पालन करके परिवर्तन लागू किया जाए तो सफलता की पूरी संभावना रहती है। नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को आगे चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

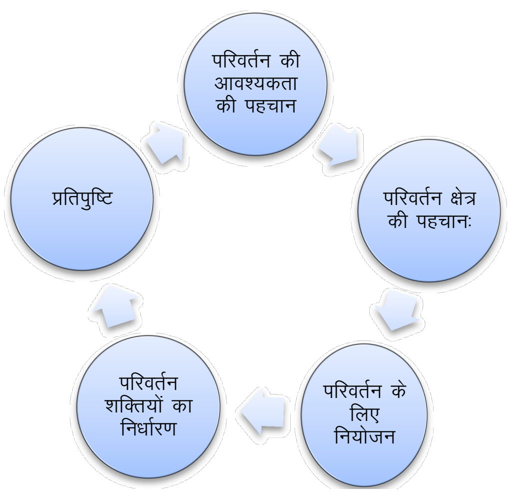

चित्र – 12.3 नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया

(i) **परिवर्तन की आवश्यकता की पहचानः** नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया में सर्व प्रथम यह देखा जाता है कि परिवर्तन की आवश्यकता क्या है? आखिर परिवर्तन का विचार मस्तिष्क में क्यों आया? परिवर्तन की आवश्यकता का संबंध संगठन को प्रभावित करने वाले तत्वों से है। संगठन को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हो सकते हैं। यहां पर यह देखने की आवश्यकता है कि कोई विशेष तत्व संगठन को किस प्रकार प्रभावित करता है। यह जानकारी मिलते ही आवश्यकता का पता लग जाता है। उदाहरण के लिए, अनेक प्रतियोगी कम्पनियों का बाजार में प्रवेश, एक ऐसा बाहरी तत्व है जिससे पहले से स्थापित कम्पनी प्रभावित होती है। गहन अध्ययन करने पर पता चला कि इस बाहरी तत्व के क्रियाशील होने के कारण कम्पनी की बिक्री में कमी आ गई है। कम्पनी के सामने बिक्री में भारी गिरावट एक समस्या है। इसे दूर करने के लिए कम्पनी को अपने संगठन में कुछ परिवर्तन करना होगा। इस समस्या के संदर्भ में यह पता लगाया जाएगा कि बिक्री की वर्तमान मात्रा कितनी है और वास्तविक मात्रा कितनी होनी चाहिए? दोनों के अंतर को समाप्त करना अथवा बिक्री मे गिरावट को रोकना, परिवर्तन की आवश्यकता है।

इसी प्रकार परिवर्तन की आवश्यकता के और भी अनके कारण हो सकते है, जैसे– कर्मचारी परिवर्तन दर में वृद्धि, संस्था के विस्तार की आवश्यकता, श्रम–प्रबंध में कटुता, उत्पादन लागत में लगातार वृद्धि, सरकार की आयात–निर्यात नीति में परिवर्तन।

(ii) **परिवर्तन क्षेत्र की पहचानः** नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के दूसरे चरण पर परिवर्तन क्षेत्र की पहचान की जाती है। यह निश्चित किया जाता है कि परिवर्तन कार्य संबंधी होगा अथवा संगठन संबंधी अथवा दोनों। प्रथम चरण पर परिवर्तन की आवश्यकता की जानकारी प्राप्त होने से एक इशारा मिल जाता है कि परिवर्तन किस प्रकार का होगा। उदाहरण के लिए, बिक्री में गिरावट के अनेक प्रकार हो सकते है – माल की घटिया क्वालिटी, विज्ञापन में कमी, घटिया ग्राहक सेवाएं, उधार सुविधा न देना, आदि। माना कि प्रस्तुत उदाहरण में बाजार सर्वेक्षण के बाद यह पता चलता है कि माल की घटिया किस्म बिक्री में गिरावट का कारण है। पुनः अध्ययन करने पर पता

चला कि माल की किस्म को आधुनिक मशीनों द्वारा ही सुधारा जा सकता है। अतः स्पष्ट हुआ कि यहां आधुनिक मशीनों की स्थापना करना परिवर्तन क्षेत्र है।

आधुनिक मशीनों की स्थापना करना एक कार्य संबंधी परिवर्तन है। प्रस्तुत समस्या के हल के लिए कार्य संबंधी परिवर्तन के साथ–साथ संगठन संबंधी परिवर्तन भी करना पड़ सकता है। जैसे– उत्पादन विभाग में किसी अनुभवी प्रबंधक का स्थानान्तरण करना तथा विभागीय प्रबंधक के साथ–साथ उप–विभागीय प्रबंधक का एक नया पद स्थापित करना।

(iii) **परिवर्तन के लिए नियोजन**: जैसे ही यह स्पष्ट हो जाए कि परिवर्तन किस क्षेत्र में किया जाना है परिवर्तन के लिए नियोजन की कार्यवाही शुरु की जाता है। परिवर्तन के लिए नियोजन में निम्नलिखित तीन प्रश्नों के बारे में निर्णय लिया जाता है:

→ परिवर्तन कौन करेगा?

→ परिवर्तन कब किया जाएगा?

→ परिवर्तन कैसे किया जाएगा?

→ **परिवर्तन कौन करेगा**: परिवर्तन के लिए नियोजन करते समय सर्वप्रथम यह निर्णय लिया जाता है कि परिवर्तन को कौन व्यक्ति लागू करेगा? जो व्यक्ति परिवर्तन लागू करता है उसे परिवर्तन एजेंट कहते हैं परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते है: छोटा परिवर्तन तथा बड़ा परिवर्तन।

छोटे परिवर्तन के लिए परिवर्तन एजेंट का काम संबंधित प्रबंधक कराता है। बड़े परिवर्तन के लिए परिवर्तन की जिम्मेवारी संस्था के ही किसी वरिष्ठ व अनुभवी प्रबंधक को दी जाती है अथवा किसी बाहरी पेशेवर व्यक्ति को यह काम सौंपा जाता है।

→ **परिवर्तन कब किया जाएगा?** यह प्रश्न समय से संबंधित है। परिवर्तन के लिए उचित समय का निर्धारण करते समय ध्यान रखे जाने वाली मुख्य बातों इस प्रकार हैं:

a) विदेशी शक्तियों की संख्या का निर्धारण

b) विदेशी शक्तियों को समझने में लगने वाले समय

c) नये साधनों को जुटाने में लगने वाला समय

d) कर्मचारियों के प्रशिक्षण में लगने वाला समय

→ **परिवर्तन कैसे किया जाएगा?** इसके अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि पूरे परिवर्तन को एकदम लागू किया जाएगा अथवा धीरे–धीरे। यदि परिवर्तन को धीरे–धीरे लागू किया जाना है तो विभिन्न चरणों का समय निश्चित किया जाता है।

(iv) **परिवर्तन शक्तियों का निर्धारणः** परिवर्तन नियोजन करने के बाद परिवर्तन को प्रभावित करने वाली शक्तियों का निर्धारण किया जाता है। परिवर्तन में एक व्यक्ति, एक समूह अथवा पूरा संगठन प्रभावित हो सकता है। पहले परिवर्तन से प्रभावित होने वाली कुल शक्तियों का निर्धारण किया जाता है। इसके बाद यह देखा जाता है कि उनमें से कितनी शक्तियां परिवर्तन के पक्ष में हैं और कितनी विरोध में। उदाहरण के लिए, आधुनिक मशीनों की स्थापना के कुछ व्यक्ति पक्ष में होंगे तथा कुछ विरोध में। जो व्यक्ति यह सोचते हैं कि आधुनिक मशीनों से काम आसान हो जाएगा व कुछ नया सीखने को मिलेगा, वे परिवर्तन के पक्ष में होंगे। इसके विपरीत, जो व्यक्ति यह सोचते हैं कि नई मशीनों पर काम करने के लिए प्रशिक्षण लेना पड़ेगा व छंटनी भी की जा सकती है, वे परिवर्तन का विरोध करेंगे।

परिवर्तन एजेंट को परिवर्तन के पक्ष में व विरोध में रहने वाली शक्तियों की तुलना करके परिवर्तन को लागू करने का निर्णय लेना होता है। यदि परिवर्तन के पक्ष में अधिक लोग हैं तो उसे लागू कर देना चाहिए। यदि विरोध में अधिक लोग है तो परिवर्तन को उचित समय की इंतज़ार में स्थगित कर देना चाहिए। यदि दोनों शक्तियां बराबर है तो कोई भी निर्णय लिया जा सकता है। ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि पक्ष मजबूत हो जाए और विपक्ष कमजोर।

(v) **प्रतिपुष्टिः** नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के अंतिम चरण के रुप में यह देखा जाता है कि क्या परिवर्तन कार्यक्रम सही दिशा की ओर जा रहा है अथवा नहीं। यह जानकारी प्राप्त करना प्रतिपुष्टि है। परिवर्तन कार्यक्रम लागू करने से पहले पूरा विश्लेषण करने के बाद भी कुछ विरोधी शक्तियां बाधा उत्पन्न कर सकती हैं या कोई अन्य कठिनाई आड़े आ सकती है। यही कारण है कि परिवर्तन कार्यक्रम पर लगातार

निगरानी रखनी होती है। किसी भी समस्या के तुरन्त समाधान से परिवर्तन कार्यक्रम की सफलता सुनिश्चित होती है।

प्रत्येक संगठन गतिशील वातावरण में जन्म लेता है और विकसित होता है। इसलि संगठन गतिशील होता है अर्थात इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। यही कारण है कि जैसे ही एक परिवर्तन को लागू करने का काम पूरा होता है तो कोई दूसरी समस्या आड़े आ सकती है, परिणामस्वरुप, इस नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया को फिर से दोहराना पड़ता है और यह क्रम लगातार चलता रहता है।

परिवर्तन एजेंट

परिवर्तन एजेंट का अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जो परिवर्तन कार्यक्रम को संगठन में लागू करते हैं। विस्तार के आधार पर परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है–

→ छोटा परिवर्तन, तथा

→ बड़ा परिवर्तन

जहां तक छोटे परिवर्तन का प्रश्न है यह काम संबंधित विभागीय प्रबंधकों द्वारा पूरा कर लिया जाता है। इसके लिए विशेषज्ञों की जरुरत नहीं होती, लेकिन बड़े परिवर्तनों को लागू करने के लिए जिन परिवर्तन एजेंटों की जरुरत होती है वे निम्नलिखित हैं :

(ख) आंतरिक परिवर्तन एजेंट

आंतरिक परिवर्तन एजेंट दो प्रकार के होते हैः

(i) **मुख्य प्रबंधकः** बड़े परिवर्तन को लागू करने हेतु मुख्य प्रबंधक एजेंट के रुप में काम कर सकता है। सारा परिवर्तन कार्यक्रम मुख्य प्रबंधक की देख–रेख में तैयार किया जाता है। जैसे ही परिवर्तन लागू होता है तो मुख्य प्रबंधक अपने–आप को कार्यक्रम से अलग कर लेता है और आगे की जिम्मेदारी संबंधित विभागीय प्रबंधक संभालते हैं। अन्य शब्दों में परिवर्तन की प्रारंभिक अवस्था में मुख्य प्रबंधक और बाद में संबंधित विभागीय प्रबंधक परिवर्तन एजेंट के रुप में काम करते हैं। संक्षेप में मुख्य प्रबंधक की भूमिका प्रभावपूर्ण परिवर्तन के लिए नेतृत्व प्रदान करता है।

(ii) **परिवर्तन सलाहकारः** कम्पनी के किसी भी स्तर के कर्मचारी की नियुक्ति परिवर्तन सलाहकार के रुप में की जा सकती है। प्रायः ये वह कर्मचारी होतें हैं जो समय–समय पर परिवर्तन एजेंट का प्रशिक्षण पेशेवर सलाहकारों से लेते रहते हैं। इन

परिवर्तन एजेंटों को एक विशेष परिवर्तन को लागू करने की जिम्मेवारी सौंपी जाती है। एक विशेष समय तक ये लगातार परिवर्तन से काम को करते हैं। जैसे ही परिवर्तन कार्यक्रम को लागू करने का कार्य पूरा हो जाता है ये पुनः अपने पैतृक विभाग में आ जाते है। ये परिवर्तन एजेंट कम्पनी के ही कर्मचारी होते हैं और सभी अन्य कमचारियों से परिचित होते हैं। इनका मुख्य काम विरोध कर सकने वाले लोगों से संपर्क स्थापित करके ऐसा वातावरण तैयार करना होता है ताकि परिवर्तन को सभी सहर्ष स्वीकार कर लें। संक्षेप में, परिवर्तन सलाहकार की भूमिका परिवर्तन संबंधी शिक्षा प्रदान करने की होती है।

(ख) **बाहरी परिवर्तन एजेंट**

बाहरी परिवर्तन एजेंटों की श्रेणी में मुख्यतः पेशेवर सलाहकारों को सम्मिलित किया जाता हैः

पेशेवर सलाहकारः कई बार परिवर्तन की गंभीरता को समझते हुए पेशेवर सलाहकारों को परिवर्तन एजेंट के रुप में नियुक्त किया जाता है। पेशेवर सलाहकार अपने–अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं। जैसे–प्रबंध विशेषज्ञ, वित्त विशेषज्ञ, विपणन विशेषज्ञ, लागत नियंत्रण विशेषज्ञ, श्रम संबंधी विशेषज्ञ आदि। इनकी नियुक्ति उच्च प्रबंध द्वारा की जाती है। परिवर्तन विशेषज्ञ अपनी सेवाओं के बदले पारिश्रामिक लेते हैं। प्रायः ये विशेषज्ञ परिवर्तन कार्यक्रम को आंतरिक प्रबन्धकों को समझाते हैं परिवर्तन कार्यक्रम को वास्तविक रुप में लागू करने का काम आंतरिक प्रबन्धक ही करते हैं। संक्षेप में, पेशेवर सलाहकार की भूमिका कार्यक्रम सलाहकार की होती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.15 पविर्तन कौन करता है? प्र.16 कार्य संबंधी एंव संगठन संबंधी परिवर्तन में क्या अंतर है? प्र.17 क्या परिवर्तन नियोजित हो सकता हैं? प्र.18 परिवर्तन एजेंट कौन हो सकता है?

परिवर्तन के विरोध के कारण

एक व्यावसायिक इकाई के जीवित रहने एवं विकास के लिए परिवर्तन आवश्यक हैः प्रत्येक व्यावसायिक इकाई लगातार बदलते वातावरण में ही जन्म लेती है और विकसित होती है। अतः बदलते वातावरण के अनुसार ही संगठन में परिवर्तन करना जरुरी होता है। जैसे – यदि फैशन बदल रहा है तो उसके अनुरुप नये उत्पाद बाजार में लाने ही होंगे। इसी प्रकार यदि टाईप मशीन की जगह कम्प्यूटर से काम होने लगता है तो यह परिवर्तन करना ही होगा।

परिवर्तन का दूसरा पहलू है विरोधः मनुष्य स्वभाव से ही कुछ ऐसा है कि किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विरोध करता है। एक कर्मचारी को ही लें। यदि बैंक में कम्प्यूटर स्थापित करवा दिया जाए तो वह कर्मचारी जिसको कम्प्यूटर का ज्ञान नहीं है निश्चित रुप में इस परिवर्तन का विरोध करेगा। उसके द्वारा प्रकट किया जाने वाले विरोध के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे– कम्प्यूटर चलाना न सीख पाने के कारण नौकरी से हटाए जाने का डर, उससे इस परिवर्तन के बारे में सलाह न लिए जाने की नाराज़गी, कम्प्यूटर लगाने का सुझाव किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाना जिसे वह पसंद नहीं करता, आदि आदि। परिवर्तन एवं इसके विरोध के संबंध में **मायो** ने कहा है कि, ''मनुष्य हमेशा अनजान से डरता है और परिवर्तन अनजान को ही प्रस्तुत करता है।''

परिवर्तन के प्रबंधः का अर्थ है प्रस्तावित परिवर्तन को निर्विरोध लागू करना। हम देख चुके हैं कि परिवर्तन का विरोध होने की पूरी संभावना रहती है। अब प्रश्न यह उठता है कि समस्या का समाधान क्या है? इस प्रश्न का हल ढूंढने के लिए पहले यह जानना होगा कि परिवर्तन के विरोध के क्या कारण हैं। इसके बाद परिवर्तन के विरोध को कम करने का बात की जाएगी। यहां यह जान लेना जरुरी है कि परिवर्तन का विरोध केवल किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों द्वारा ही नहीं किया जाता है बल्कि संगठन द्वारा भी किया जा सकता है।

I. **व्यक्तिगत तत्व**

व्यक्तियों द्वारा परिवर्तन का विरोध किए जाने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैंः

(क) **आर्थिक कारण** :

परिवर्तन के विरोध के मुख्य कारण निम्नलिखित हैंः

(i) **बेरोजगारी का डरः** प्रायः देखा जाता है कि तकनीकी परिवर्तन के कारण विकसित हुई नई मशीनों पर पुराने कर्मचारी काम करने में असमर्थ रहते हैं ऐसी स्थिति में उसकी छंटनी की संभावना बढ़ जाती है। छंटनी का परिणाम बेरोजगारी होता है। अतः बेरोजगरी के डर से विरोध उत्पन्न होता है। इस तरह का विरोध व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी। कर्मचारियों का एक समूह स्वचाालित अथवा आधुनिक मशीनों का विरोध कर सकता है।

(ii) **पदावनति का डरः** वांछित कुशलता प्राप्त न कर सकने की स्थिति में पदावनति का डर बना रहता है। अतः कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते है।

(iii) **अधिक कार्यभार का डरः** तकनीकी परिवर्तनों के कारण हो सकता है कर्मचारियों का कार्यभार बढ़ जाए जबकि उनका पारिश्रमिक पूर्व–स्तर ही रहे। ऐसी स्थिति में भी कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(ख) व्यक्तिगत कारण

परिवर्तन के विरोध के मुख्य व्यक्तिगत कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **परिवर्तन में भागीदारी नहीं**: कुछ कर्मचारी इस बात से नाराज़ रहते हैं कि परिवर्तन कार्यक्रम तैयार करते समय उनको भागीदार क्यो नहीं बनाया गया। इसी कारण वे परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(ii) **प्रशिक्षण का बोझः** तकनीकी परिवर्तनों के कारण कर्मचारियों को प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। लेकिन प्रायः देखा जाता है कि कर्मचारी प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर जाने से परहेज करते हैं। ऐसे कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(iii) **नीरसता का डरः** कुछ कर्मचारी यह समझते हैं कि तकनीकी परिवर्तनों से विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। और विशिष्टीकरण से काम में नीरसता आ जाती है। इसी डर से वे परिवर्तन को विरोध करते हैं।

(iv) **अहम् असन्तुष्टि का डरः** अह्म के शिकार लोग हमेशा परिवर्तन का विरोध करते है। जब भी किसी परिवर्तन से उनके अह्म को ठेस पहुंचती है तो वे परिवर्तन का विरोध करने से नही चूकते।

(v) **अनिश्चितता से हानि का डरः** ऐसा भी हो सकता हे कि कोई कर्मचारी परिवर्तन का विरोध तो नहीं करना चाहता है, लेकिन परिवर्तन से प्राप्त होने वाले लाभ के बारे में

चिंतित रहता है। परिवर्तन का प्रभाव भविष्य में होता है और भविष्य अनिश्चित होता है। अतः वह भावी सफलता की अनिश्चितता से परेशान होकर परिवर्तन का विरोध करने लगता है।

(ग) सामाजिक कारण

परिवर्तन के विरोध के मुख्य सामाजिक कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **नए सामाजिक समायोजनः** परिवर्तन के लागू होने से कर्मचारियों के विभाग, स्थान, समूह, बॉस आदि में बदलाव आ सकता है। इस प्रकार कर्मचारी को एक नए वातावरण में काम करना पड़ता है। लेकिन सभी कर्मचारी ऐसे वातावरण के साथ समायोजन करने के लिए तैयार नहीं होते। कुछ कर्मचारी तो सामाजिक समायोजन के डर से पदोनति तक नहीं लेते। अतः ऐसे कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(ii) **समूह परंपराएंः** कुछ कर्मचारी अपने समूह की परंपराओं से बंधे होते हैं। जैसा समूह के सब लोग करते हैं वे भी वैसा ही करते हैं। ऐसे कर्मचारी परिवर्तन का विरोध करते हैं चाहे उन्हें व्यक्तिगत रुप से लाभ ही क्यों न होता हो।

(iii) **एक तरफा लाभः** कुछ कर्मचारी ऐसा सोचते हैं कि परिवर्तन से लाभ केवल कम्पनी को ही होगा न कि कर्मचारियों को। ऐसी स्थिति में वे परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(II) संगठनात्मक तत्व

परिवर्तन के विरोध में मुख्य संगठनात्मक कारण निम्नलिखित हैं:

(i) **शक्ति एवं प्रभाव का डरः** यदि उच्च प्रबंधकों को लगे कि परिवर्तन से उनके शक्ति एवं प्रभाव को ठेस पहुंचेगी तो वे निश्चित रुप से इसका विरोध करेंगे। उदाहरण के लिए, कम्पनी का विस्तार हो जाने के कारण अधिकारों के विकेन्द्रियकरण को परिवर्तन के रुप में लागू किए जाने की आवश्यकता होती है। लेकिन ऐसा करने से उच्च प्रबंधकों की शक्ति एवं प्रभाव में कमी आती है। उच्च प्रबंधक ऐसे परिवर्तनों का विरोध कर सकते हैं।

(ii) **साधनों की कमी का डरः** प्रत्येक संस्था में उपलब्ध साधन प्रायः सीमित मात्रा में होते हैं। दूसरी ओर, कोई परिवर्तन तो आवश्यक होता है लेकिन सीमित साधन उसे लागू करने में बाधा बन जाते हैं। अतः साधनों की कमी के कारण के भय से उच्च प्रबंधक ऐसे परिवर्तन का विरोध करते हैं।

(iii) **भारी परिवर्तन लागतः** कुछ परिवर्तन ऐसे होते हैं जिनको लागू करने पर पुरानी संपत्तियों व पुराने लोगों सभी को बदलना पड़ सकता है। ऐसा परिवर्तन भारी लागत वाला होता है। कुछ कम्पनियों इसे सहन नहीं कर सकतीं। परिणामतः वे इस परिवर्तन का विराध करती हैं।

परिवर्तन में विरोध को कम करने के उपाय

परिवर्तन को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए संभावित विरोध को पहले ही न्यूनतम करने का प्रयास करना चाहिए। अब प्रश्न यह है कि विरोध से कैसे बचा जाए। विरोध के उपाय ढूंढने से पहले प्रबंध को यह समझ लेना चाहिए कि परिवर्तन का विरोध करना मानव स्वभाव है और इस स्वभाव को किसी दबाव से नहीं बदला जा सकता, बल्कि दबाव की स्थिति तो विरोध को और बढ़ा सकती है। अतः विरोध को मानवीय ढंग से ही न्यूनतम करने का प्रयास किया जाना चाहिए। विरोध का कारण व्यक्तिगत हो अथवा संगठनात्मक, यह दो तरह से क्रियाशील होता है – या तो एक व्यक्ति अकेला विरोध करता है अथवा समूह में। जिस प्रकार कर्मचारी कभी अकेले परिवर्तन का विरोध करते हैं और कभी समूह में, ठीक उसी प्रकार संगठन स्तर पर भी प्रबंधक कभी अकेले तों कभी समूह में परिवर्तन का विरोध करते हैं। इसलिए परिवर्तन के विरोध के उपाय व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों स्तरों पर किए जाने चाहिए। इसी आधार पर परिवर्तन के विरोध को कम करने के उपायों को निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। तथा कुछ अन्य उपाय भी सुझाए जा सकते हैं:

(क) **व्यक्तिगत स्तर पर**

व्यक्तिगत स्तर पर परिवर्तन के विरोध को रोकने के निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

(i) **भागीदारीः** व्यक्तिगत स्तर पर कर्मचारियों की यह शिकायत रहती है कि परिवर्तन का निर्णय लेते समय उनकी सलाह नहीं ली गई। इसीलिए वे परिवर्तन का विरोध करते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए परिवर्तन एजेंट को चाहिए कि परिवर्तन में प्रभावित होने वाले व्यक्तियों से सलाह कर ली जाए। अर्थात परिवर्तन के निर्णयों में उनको भागीदार बना लेना चाहिए। इस संदर्भ में कहा जाता है कि भागीदार में बचनबद्धता बढ़ती है। कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे परिवर्तन का विरोध नहीं करता जो उनकी सलाह से किया गया हो।

(ii) **शिक्षण एवं प्रशिक्षणः** कर्मचारी परिवर्तन का विरोध इसलिए भी करते हैं क्योंकि उन्हें इसके गुण–दोषों की जानकारी नहीं होती। अतः समय–समय पर उन्हें परिवर्तन धारणा की जानकारी देते रहना चाहिए। ऐसा करने से वे मनोवैज्ञानिक रुप से परिवर्तन के लिए तैयार हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें नई विधियों तथा आधुनिक मशीनों को चलाने में समक्ष बनाने के लिए प्रशिक्षण देना चाहिए। ऐसी स्थिति में नीरस समझे जाने वाले काम में भी उन्हें आनन्द आने लगेगा।

(iii) **संदेशवाहनः** कभी–कभी परिवर्तन का विरोध इसलिए भी किया जाता है क्योंकि संबंधित व्यक्तियों को यह जानकारी ही नहीं होती कि परिवर्तन क्यों किया जा रहा है और उसके क्या प्रभाव होंगे। इस समस्या को दूर करने के लिए प्रभावपूर्ण संदेशवाहन प्रणाली को लागू किया जाना जरुरी है।

(iv) **नेतृत्वः** कभी–कभी यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि लोग परिवर्तन एजेंट को पसंद नहीं करते और केवल इसी कारण वे परिवर्तन का विरोध करते हैं। अतः परिवर्तन एजेंट उसी व्यक्ति को बनाया जाना चाहिए जिसमें अच्छे नेता के गुण हों। एक कुशल नेता में उसके अनुयायियों का पूर्ण विश्वास होता है। इसी विश्वास के कारण वे उसकी हर बात को सहर्ष स्वीकार करते हैं और विरोध का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

(v) **दबावः** वैसे तो परिवर्तन के विरोध को मानवीय ढंग से ही हल करना चाहिए, लेकिन यदि परिवर्तन को तुरन्त आवश्यकता हो और कोई विशेष कर्मचारी अकारण ही इसके विरोध पर अड़ जाए तो दबाव का सहारा भी लिया जा सकता है। ऐसे कर्मचारी को नौकरी से हटाने, हस्तांतरण करने तथा पदोनति पर रोक लगाने की धमकी दी जा सकती है।

(vi) **आर्थिक सुरक्षाः** कर्मचारियों को यह विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि परिवर्तन से उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक हानि नहीं होगा। आर्थिक हानि की दशा में उन्हें पूरी क्षतिपूर्ती का भरोसा दिलाया जाना चाहिए। इस प्रकार परिवर्तन का सामना करने के लिए वे मानसिक रुप से तैयार हो जाएंगे।

(ख) समूह स्तर पर

कभी–कभी कर्मचारियों का एक विशेष समूह परिवर्तन का विरोध करता है। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाए जा सकते हैं:

(i) **सौदेबाजी** : इस उपाय का प्रयोग उस समय किया जाता है जब परिवर्तन से किसी विशेष समूह को हानि होती है। ऐसी स्थिति में लाभ एवं लागत में संतुलन स्थापित किया जाना जरुरी होता है। इसका अर्थ है कि जिस पक्ष को परिवर्तन से जितनी हानि होती हो उसे किसी अन्य रुप में उतना ही लाभ भी होना चाहिए। तभी परिवर्तन को सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। ऐसे सौदे प्रायः श्रम संगठनों के साथ किए जाते है।

(ii) **समूह से संपर्कः** परिवर्तन के विरोध की संभावना को समाप्त करने के लिए समूह के साथ विचार–विमर्श किया जा सकता है। विचार–विमर्श के दौरान उन्हें समझाया जा सकता है कि परिवर्तन किन कारणों से आवश्यक है तथा विभिन्न पक्षकारों पर उसके क्या प्रभाव पड़ेंगे। इसके अतिरिक्त, समूह के प्रतिनिधियों अथवा कुछ वरिष्ठ सदस्यों को परिवर्तन का निर्णय लेते समय भगीदार बनाया जा सकता है। यदि निर्णय समूह की सहमति से लिया जाता है तो विरोध की संभावना शून्य हो जाती है।

(iii) **समूह से संपर्क के दौरान** : प्रबंधकों को इस बात के लिए मानसिक तौर पर तैयार किया जाना चाहिए कि परिवर्तन से कम्पनी को लाभ होता हो तो उन्हें अपने प्रभाव एवं शक्तियों की परवाह नही करनी चाहिए। ऐसे मौके पर उन्हें संस्था के प्रति प्रबंधकों के सामाजिक उत्तरदायित्व को याद दिलाना चाहिए।

(ग) अन्य उपाय

परिवर्तन के विरोध को कम करने के कुछ उपाय निम्नलिखित हैं:

(i) **साधनों की व्यवस्थाः** साधनों की कमी का डर उच्च परिवर्तन का विरोध करने के लिए मजबूर करता है। प्रबंधकों को चाहिए कि पर्याप्त साधन जुटाने के बाद ही परिवर्तन के बारे में सोचें।

(ii) **परिवर्तन लागतों का प्रबंधः** परिवर्तन के कारण स्थायी संपत्तियों एवं मानव–शक्ति के अयोग्य हो जाने से भारी हानि का सामना करना पड़ता है। उच्च प्रबंधकों को देखना चाहिए कि स्थायी कंपनियों को बदलने से होने वाली हानि को परिवर्तन कार्यक्रम को

लागू करके पूरा कर लिया जाए अन्यथा परिवर्तन का विचार त्याग देना चाहिए। इसी प्रकार मानव शक्ति को शिक्षण एवं प्रशिक्षण देकर योग्य बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि उनका अस्तित्व खतरे मे न पड़े। और संस्था में भी नये कर्मचारियों पर अधिक खर्च करने से बचा जा सके।

(iii) **परिवर्तन का सही समयः** परिवर्तन लागू करने के समय का परिवर्तन के विरोध पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि कम्पनी को कम लाभ हो रहे हैं और कर्मचारियों को बोनस आदि न मिल रहा है तो ऐसे मौके पर परिवर्तन की बात सोचना मूर्खता होगी। इसके विपरीत, जब कम्पनी को अच्छे लाभ हो रहे हों तथा कर्मचारियों को अच्छा वेतन व अन्य सुविधाएं दी गई हों तो मौके का लाभ उठाते हुए तुरन्त परिवर्तन कार्यक्रम लागू कर देना चाहिए।

(iv) **धीमा प्रवेशः** जब कभी परिवर्तन कार्यक्रम को जल्दबाजी में लागू किया जाता है तो उसका विरोध होता है। कर्मचारी समझ नहीं पाते कि क्या तथा क्यों किया जा रहा है। अतः प्रकृत परिवर्तन को धीरे–धीरे अनेक चरणों में लागू करना चाहिए। ऐसा करने से कर्मचारी मानसिक रुप से तैयार हो जाते है और विरोध में कमी आती है।

4.7 अभिप्रेरण का अर्थ एवं परिभाषाएँ

अभिप्रेरण का अर्थ

एक व्यक्ति जब कोई कार्य करता है तो इसके पीछे उसकी कोई न कोई जरुरत होती है जो उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है तथा प्रेरित करने वाली इन जरुरतों को प्रेरणा कहते हैं। अभिप्रेरण के अन्तर्गत व्यक्तियों को उनकी जरुरत अथवा प्रेरणा का अनुभव करवाकर उनमे काम करने की इच्छा को जागृत किया जाता है। अभिप्रेरण का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद 'मोटीवेशन' है, जिसकी उत्पत्ति अंग्रेजी के 'मोटिव' शब्द से हुई है। 'मोटिव' शब्द का अर्थ व्यक्ति में छिपी हुई ऐसी इच्छा शक्ति से है जो उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करती हे। इस प्रकार 'मोटिवेशन' का अर्थ हुआ, व्यक्ति में छिपी इच्छा शक्ति का उसे अनुभव कराना। संक्षेप में, अभिप्रेरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्तियों को उनकी जरुरतों का अनुभव इसलिए कराया जाता है कि उन जरुरतों को पूरा करने के लिए वे कुछ कार्य करेंगे जाकि संस्था के हित में होगा

टूल बाक्स – 2
अभिप्रेरण
इसका अभिप्राय व्यक्ति में छिपी हुई इच्छा–शक्ति से है जो उसे काम करने के लिए प्रेरित करती है। यह एक आंतरिक अनुभव है ।

अभिप्रेरण की परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर अपने अनुभव के आधार पर अभिप्रेरण की विभिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. **कुण्टज़ तथा ओ'डेनोल** के मतानुसार, 'अभिप्रेरण करना लोगों को इच्छित ढंग से कार्य करने के लिए प्रेरित करना है।'
2. **डब्लयु.जी.स्कॉट** के शब्दों में, 'अभिप्रेरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जो इच्छित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु लोगों को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है।'

टूल बाक्स–3
अभिप्रेरण
इसका अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जो वांछित उद्देश्य प्राप्ति हेतु लोगों में उतेजना पैदा करती है।

4.8 अभिप्रेरण की विशेषताएँ एवं महत्व

अभिप्रेरण की विशेषताएँ

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों के आधार पर अभिप्रेरण की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं:

1. **अभिप्रेरण एक आंतरिक अभिव्यक्ति का अनुभव है**: अभिप्रेरण एक मनोवैज्ञानिक धारणा है जो व्यक्ति के अन्दर पैदा होती है। सर्वप्रथम व्यक्ति के मस्तिष्क में कुछ आवश्यकताएं जन्म लेती हैं जिनका प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ता है। अर्थात उनको संतुष्ट करने के लिए वह कुछ कार्य करने की सोचता है।

2 **अभिप्रेरण से लक्ष्य प्राप्ति व्यवहार पैदा होता है** : अभिप्रेरण एक ऐसी शक्ति है जो कर्मचारियों को उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है। अभिप्रेरित कर्मचारियों के व्यवहार से स्पष्टतः दिखाई देता है। कि उनका रुझान उद्देश्य प्राप्ति की ओर है। उदाहरण के लिए, पदोन्नति अभिप्रेरण की विधि है। पदोन्नति की इच्छा रखने वाले कर्मचारी निश्चित रुप से बढ़िया निष्पादन का प्रयास करेंगे

3 **अभिप्रेरण सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती हैं:** अभिप्रेरण के दृष्टिकोण से कर्मचारी दो तरह के होते हैं – काम करने वाले तथा कामचोर। जो कर्मचारी काम करने वाले हैं उन्हें पुरस्कृत करके प्रोत्साहित किया जाता है। इसे सकारात्मक अभिप्रेरण कहते हैं। दूसरी ओर, जो कर्मचारी कामचोर प्रकृति के है उन्हें पदावनति, निष्कासन, पदच्युति आदि का डर दिखाकर प्रोत्साहित किया जाता है। ऐसे लोग सज़ा मिलने के डर से काम करने लगते हैं। इसे नकारात्मक अभिप्रेरण कहते हैं।

4 **अभिप्रेरण एक जटिल प्रक्रिया है** : एक संगठन में काम करने वाले सभी लोग भिन्न प्रकृति के होते हैं। सभी की आवश्यकताएं भिन्न होती हैं। इसलिए सभी को किसी एक अभिप्रेरक से प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता है। संबंधित व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मौद्रिक व अमौद्रिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। अतः यह एक जटिल प्रक्रिया है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 अभिप्रेरण का क्या अर्थ है? प्र.2 अभिप्रेरण एक जटिल प्रक्रिया है ? क्या आप सहमत हैं? प्र.3 क्या अभिप्रेरण संगठन का केन्द्र बिंदु है?

अभिप्रेरण का महत्व

रीनसिस लिकर्ट ने अभिप्रेरण के महत्व को स्पष्ट करते हुए इसे 'प्रबन्ध का हृदय' बताया है। इसी प्रकार ऐलन ने अभिप्राय के महत्व तथा आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा है कि "अपर्याप्त रुप से अभिप्रेरित व्यक्ति सर्वाधिक सुदृढ़ संगठन को भी प्रभावहीन कर देते हैं। अभिप्रेरण का महत्व अग्रलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है :

(1) **निष्पदान स्तर में सुधार** : एक व्यक्ति की कुशलता पर कार्य करने की योग्यता तथा कार्य करने की इच्छा दोनों का प्रभाव पड़ता है। कार्य करने की योग्यता तो शिक्षण व प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति बहुत पढ़ा–लिखा है और इस योग्यता के आधार पर उसे नियुक्त कर लिया गया है। लेकिन यह जरुरी नहीं है कि वह बढ़िया काम करेगा। बढ़िया काम करवाने के लिए उसमें इच्छा जागृत करनी होगी और ऐसा अभिप्रेरण से ही संभव है। अतः अभिप्रेरण से कुशलता में सुधार होता है। एक कर्मचारी की कुशलता ''उत्पादकता में वृद्धि'' तथा ''लागतों में कमी'' के रुप में दृष्टिगोचर होती है।

(2) **कर्मचारियों की नकारात्मक अथवा उदासीनता मनोवृत्ति को बदलने में सहायकः** संगठन में कुछ व्यक्ति नकारात्मक मनोवृत्ति के होते हैं। वे हमेशा सोचते हैं कि अधिक काम करने से कोई लाभ नहीं। प्रबन्धक विभिन्न अभिप्रेरक विधियों का प्रयोग करके इस मनोवृत्ति को बदलता है। उदाहरण के लिए, यदि ऐसे कर्मचारी की वित्तिय स्थिति कमजोर है तो ''पारिश्रमिक बढ़ाकर'' अथवा यदि वित्तीय ठीक है तो 'काम' की प्रशंसा करके' अभिप्रेरित किया जा सकता है।

(3) **कर्मचारी आवागमन में कमीः** कर्मचारियों के आवागमन की ऊँची दर से संस्था की साख प्रभावित होती है। इससे प्रबन्धकों के समक्ष अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। बार–बार कर्मचारियों की नियुक्ति करना, उनके शिक्षण व प्रशिक्षण की व्यवस्था करना आदि समस्याओं में समय व धन दोनो की बर्बादी होती है। एक संस्था को इस बर्बादी से केवल अभिप्रेरण ही बचा सकती है। अभिप्रेरित व्यक्ति संस्था में अधिक समय तक कार्य करते हैं और उनकी आवागमन की दर में भी कमी आती हे।

(4) **संगठन में अनुपस्थिति दर घटाने में सहायकः** कुछ संगठनों में अनुपस्थिती दर अधिक होती है। इसके मुख्य कारण ये है :

- काम की घटिया दशाएं
- सहयोगियों एवं अधिकारियों से घटिया संबंध
- संगठन में पहचान न मिलना
- अपर्याप्त पुरस्कार आदि

एक प्रबन्धक इन सभी कमियों को दूर करके कर्मचारियों का अभिप्रेरित करता है। अभिप्रेरित कर्मचारी काम से अनुपस्थित नहीं रहते क्योंकि काम का स्थान उनके लिए खुशी का स्रोत है।

(5) **परिवर्तन के विरोध में कमी**ः संगठन में नये–नये परिवर्तन होते रहते हैं। प्रायः कर्मचारी जिस तरह के ढांचे में कार्य कर रहे होते हैं वे उसमें कोई परिवर्तन स्वीकार नहीं करते जबकि समय की मांग को देखते हुए परिवर्तनों को लागू करना जरुरी होता है। इन परिवर्तनों को केवल अभिप्रेरण द्वारा ही आसानी से स्वीकृत करवाया जा सकता है। अभिप्रेरित व्यक्ति उत्साह के साथ इन्हें स्वीकार करते हुए कार्य निष्पादन करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.4 क्या अभिप्रेरण एक प्रक्रिया है?
प्र.5 असंतुष्ट आवश्यकता का क्या अभिप्राय हैं?
प्र.6 अभिप्रेरण की क्या महत्ता है?

4.9 अभिप्रेरण की प्रक्रिया एवं सिद्धांत

अभिप्रेरण प्रक्रिया

अभिप्रेरण प्रक्रिया का अभिप्राय यह जानना है कि यह कहां से शुरु होकर कहां समाप्त होती है। यह कार्य ऐसा नहीं है जो एक ही झटके में पूरा हो जाए बल्कि यह अनेक पदों का समूह है। रॉर्विस तथा कोल्टर ने भिन्न आवश्यकता–संतुष्टि प्रक्रिया प्रस्तुत की है।

(1) असंतुष्ट आवश्यकता → (2) तनाव → (3) तीव्रता → (4) खोज व्यवहार → (5) आवश्यकता संतुष्टि → (6) तनाव से मुक्ति

चित्र – 9.1 आवश्यकता–संतुष्टि प्रक्रिया

(1) **असंतुष्ट आवश्यकता** : अभिप्रेरण के प्रथम चरण के रुप में एक व्यक्ति को किसी चीज की आवश्यकता महसूस होती है अथवा उसे लगता है कि वह कहीं कमी में है।

(2) **तनाव** : व्यक्ति के मस्तिष्क में आवश्यकता असंतुष्टि का विचार आते ही वह तनाव में आ जाता है।

(3) **तीव्रता**: तीव्रता का अर्थ व्यक्ति के मस्तिष्क में हलचल शुरु होने से है। इस चरण पर व्यक्ति आवश्यकता पूर्ती के लिए प्रयत्न करता है। आवश्यकता का पूरा होना प्रयत्न की तीव्रता व सही दिशा पर निर्भर करता है।

(4) **खोज व्यवहार**: इस चरण पर व्यक्ति आवश्यकता संतुष्टि के लिए विभिन्न विकल्पों की खोज करता है। सर्वाधिक बेहतर विकल्प को अमल में लाया जाता है:

(5) **आवश्यकता पूर्ति** : यदि विकल्प वास्तव में ठीक निकले तो आवश्यकता संतुष्टि प्राप्त हो जाती है।

(6) **तनाव से मुक्ति**: आवश्यकता के संतुष्ट होते ही संबंधित व्यक्ति को तनाव से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

उपरोक्त अभिप्रेरण से स्पष्ट होता है कि जब कोई व्यक्ति बढ़िया कार्य निष्पादन करता है तो पर्दे के पीछे उसकी कोई आवश्यकता उस पर ऐसा करने के लिए दबाव बनाए रखती है। अतः आवश्यकताऐं व्यक्ति को लगातार अभिप्रेरित करती है।

अभिप्रेरण के सिद्धान्त

क. **अभिप्रेरण के सिद्धांत**

भय एवं दंड का सिद्धांत या विचारधारा अभिप्रेरण की सबसे प्राचीन विचारधारा है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति पेट के लिए कार्य करता है। अतः यदि श्रमिकों एवं कर्मचारियों को भय दिखाया जाये कि काम न करने पर अथवा मंद गति से काम करने पर उन्हें सेवानिवृत्त कर दिया जाएगा तो वे घबराकर कार्य करेंगे। इसी प्रकार दंड का भय भी श्रमिकों एवं कर्मचारियों से कार्य करा सकता है। औद्योगिक क्रांति की प्रारम्भिक अवस्था में यह विचारधारा सफल रही लेकिन कालांतर में इसका महत्व कम होता गया और वर्तमान समय में भय दिखाकर अथवा दंड देकर कार्य कराना अमानवीय समझा जाने लगा है।

ख. **पुरस्कार का सिद्धान्त** – अभिप्रेरण में पुरस्कार सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय **एफ. डब्लयू टेलर** को जाता है। यह विचारधारा इस मान्यता पर आधारित है कि अच्छा पुरस्कार कर्मचारियों को अधिकाधिक उत्पादन के लिए अभिप्रेरित करता है। जितना

अधिक पारिश्रमिक अथवा प्रतिफल कर्मचारियों को मिलेगा, वे उतनी अधिक लगन एवं परिश्रम से कार्य करेंगे। अच्छा पुरस्कार और अच्छी कार्य दिशाएं श्रमिकों को संतुष्ट बनांएगी जिससे उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। टेलर के अनुसार मौद्रिक अभिप्रेरणाएं कार्यरत श्रमिकों में कार्य के प्रति इच्छा शक्ति एवं उत्साह जागृत करने के लिए महत्वपूर्ण है। अतः उत्पादन में वृद्धि के लिए इन्हीं को आधार बनाना होगा। यह विचारधारा कार्य करने के वातावरण में मानवीय संबंधों को सर्वश्रेष्ठ बनाने पर भी बल देती हैं। लेकिन आधुनिक प्रबंध विद्वानों का विचार है कि पुरस्कार एक उत्तप्रेरक तत्व है ना कि अभिप्रेरण का साधन। श्रम श्रमिकों को संतुष्टि तो प्रदान कर सकता है लेकिन उन्हें अभिप्रेरण नहीं प्रदान कर सकता। **पीटर एफ.ड्रकर** के भी इस संबंध में यही विचार हैं कि मौद्रिक पुरस्कार से संतुष्ट होना पर्याप्त अभिप्रेरण नहीं है।

ग. **केरेट एवं स्टिक सिद्धान्त** – अभिप्रेरण का यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि श्रमिक एवं कर्मचारियों को दंड एवं पुरस्कार दोनों के समिश्रण से अभिप्रेरित किया जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिन श्रमिकों का कार्य निष्पदान निश्चित न्यूनतम स्तर से नीचा हो उन्हें दंड दिया जाना चाहिए। इस प्रकार यह विचारधारा अभिप्रेरण के लिए पुरस्कार को शर्तायुक्त बना देता है। यह दृष्किोण कुछ विशेष परिस्थितियों में ही प्रभावी होता है। **मैंक्ग्रेगर** के अनुसार, ''यह विचारधारा एक बार व्यक्ति के पर्याप्त जीवन स्तर पर पहुंच जाने के बाद कार्य करती है तब श्रमिक मुख्य रुप से उच्चतम आवश्यकताओं द्वारा अभिप्रेरित होता है। इस प्रकार यह विचारधारा केवल उन व्यक्तियों को ही प्रभावी ढंग से अभिप्रेरित करती है जिनकी जीवन निर्वाह, मनोवैज्ञानिक एवं सुरक्षा आवश्यकताएं पूरी नहीं हो सकी हैं।''

सिद्धान्त का लागू होना

अभिप्रेरण के इस सिद्धान्त में प्रबंधकों के लिए अनेक मार्ग दर्शाये गये, जो कि निम्नलिखित हैंः

(i) प्रबंधकों को ऐसे पारितोषिक या कमियों को निश्चित करना होगा जिन्हें कर्मचारी या श्रमिक प्राथमिकता देते हैं।

(ii) प्रबंधकों को यह भी निश्चित करना होगा कि निष्पादन के कौन–कौन से स्तर होगें, उत्पाद की लागत क्या आएगी तथा वस्तु की किस्म के प्रमाप क्या होंगे?

(iii) प्रबंधकों को कार्य की दशाओं, अनौपचारिक समूहों, निष्पादन की आवश्यकताओं के बारे में आधार निर्धारित करने होगे।

(iv) निष्पादन मूल्यांकन तथा पारितोषक पद्धतियों के निर्धारण में प्रबंधकों को वास्तविक निष्पादन पर ध्यान देना होगा कि मनुष्यों को जो पारितोषिक दिया जा रहा है वह उचित है या नहीं, उन्होनें संगठन में कितने दिन कार्य किया है।

(v) कार्यों मे भी आधुनिक ढंग से सुधार किया जा सकता है ताकि उनमें होने वाली घटनाओं को न्यूनतम किया जा सके।

सिद्धान्त का आलोचन

इस सिद्धान्त को काफी लाभप्रद बताया गया है परन्तु फिर भी आलोनाओं से मुक्त नहीं है। ये निम्नलिखित है –प्रबंधकों को ऐसे पारितोषिक या कमियों को निश्चित करना होगा जिन्हें कि कर्मचारी या श्रमिक प्राथमिकता देते हैं।

(i) मनुष्य की सभी इच्छाओं को पूर्णरुप से संतुष्ट नहीं किया जा सकता। कुछ आवश्यकताएँ ऐसी रह जाती हैं जो अनेक कारणो से संतुष्ट नहीं हो पातीं।

(ii) यह भी कोई वास्तविकता नही है कि व्यक्ति अभिप्रेरणा के संबंध में स्वयं चयन करेंगे।

(iii) यह भी कोई वास्तविकता नहीं है कि उच्च आशावादी सिद्धांत होगा तो अभिप्रेरण का स्तर भी ऊंचा होगा।

यद्यपि आशावादी सिद्धांत कि उपरोक्त आलोचनाएं की गई हैं परन्तु इसका आशय यह नही है कि यह सिद्धान्त निरर्थक है। यदि इसका उचित ढंग से प्रयोग एवं इस पर उचित नियंत्रण किया जाए तो निश्चित है कि अमुक आलाचनाओं का उन्मूलन किया जा सकता है तथा आशावादी दृष्टिकोण सार्थक हो सकता है।

अभिप्रेरण की विचारधारा

1. **मास्लो की आवश्यकता–प्राथमिकता विचारधारा**

   मास्लो की आवश्यकता–प्राथमिकता विचारधारा के जन्मदाता अब्राहम मास्लो हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम 1943 में अभिप्रेरण का आवश्यकता–प्राथमिकता सिद्धान्त प्रस्तुत

किया। मास्लो की विचारधारा को आवश्यकताओं की क्रमबद्धता के आधार पर विकसित किया है। उनके अनुसार एक व्यक्ति की आवश्यकताएं असंख्य हैं और इनका प्राथमिकता के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जो आवश्यकताएं अधिक तीव्र हैं उन्हे पहले संतुष्ट करने की कोशिश बाद में की जाएगी तथा इसी प्रकार कम तीव्र आवश्यकताओं के बारे में विचार किया जाएगा। मास्लो ने मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को प्राथमिकता के आधार पर पाँच भागों मे विभक्त किया है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होता है:

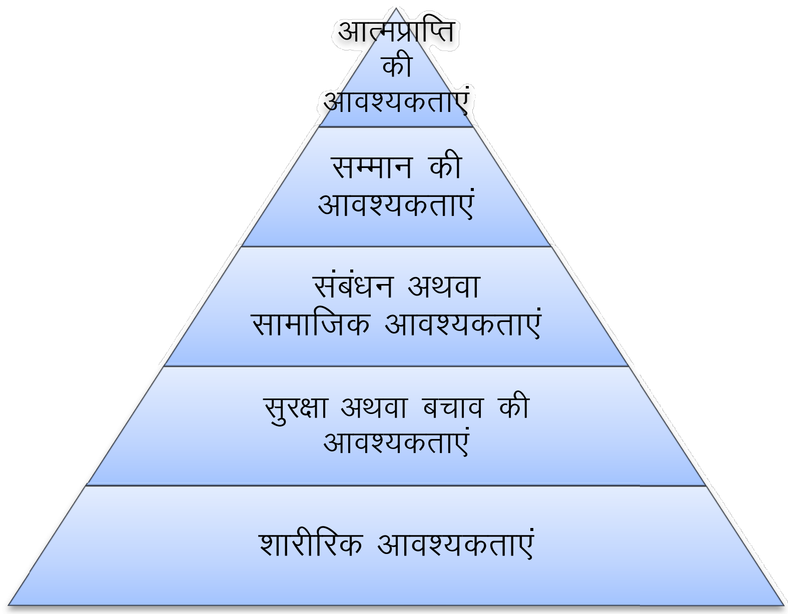

चित्र – 9.2 मास्लो का आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम का

(i) **शारीरिक आवश्यकताएं** : इस श्रेणी में वे आवश्यकताएं सम्मिलित की जाती हैं जिनको मनुष्य के जीवित रहने के लिए सबसे पहले संतुष्ट किया जाता है। इनमें खाने के लिए भोजन, रहने के लिए आश्रय (मकान), पहनने के लिए वस्त्र, आराम के लिए निद्रा आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(ii) **सुरक्षाा अथवा बचाव की आवश्यकताएं:** शारीरिक आवश्यकताएं संतुष्ट हो जाने के बाद मनुष्य का ध्यान अपनी सुरक्षा की ओर जाता है। सुरक्षा आवश्यकताओं का अभिप्राय भौतिक व आर्थिक सुरक्षा से है। भौतिक सुरक्षा का अर्थ दुर्घटना, आक्रमण,

बीमारी व अन्य आकस्मिकताओं से बचाव करना है। आर्थिक सुरक्षा का अभिप्राय रोजगार को सुरक्षित रखना व बुढ़ापे की व्यवस्था करना है।

(iii) **संबंधन अथवा सामाजिक आवश्यकताएं** : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में सम्मानपूर्वक रहना चाहता है। जिसके लिए यह आवश्यक है कि उसके मित्र व संबंध हों जिनके साथ वह अपना दुःख–सुख बांट सके। मास्लो ने इन आवश्यकताओं के प्राथमिकता में तीसरे स्थान पर रखा है।

(iv) **सम्मान की आवश्यकताएं** : सम्मान की आवश्यकता मनुष्य की अहम आवश्यकता है। इनका अभिप्राय यह हे कि मनुष्य ऊँचा पद प्राप्त करना चाहता है जिससे उसकी शक्ति बढे व अधिकार प्राप्त हो।

(v) **आत्म प्राप्ति की आवश्यकताएं** : आत्म प्राप्ति आवश्यकताओं का अभिप्राय एक व्यक्ति की क्षमता को उच्चतम स्तर तक ले जाने की चाह से है। उदाहरणार्थ एक संगीतकार संगीत कला में निपुण होना चाहता है और इसी प्रकार एक कवि कविता लिखने का विशेषज्ञ बनना चाहता है।

- **मास्लो की विचारधारा की मान्यताएं**

मास्लो की विचारधारा की मान्यताएं निम्न हैं।

(i) लोगों का व्यवहार, उनकी आवश्यकताओं से प्रभावित होता है।

(ii) लोगों की आवश्यकताएं अनेक हैं और उनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है।

(iii) संतुष्ट आवश्यकता से अभिप्रेरण बंद हो जाती है इसके बाद अगली उच्चस्तरीय आवश्यकता अभिप्रेरण का काम करती है।

(iv) लोग अगली उच्चस्तरीय आवश्यकता पर तभी जाते हैं जब निम्नस्तरीय आवश्यकता संतुष्ट हो जाती है।

व्यक्तिगत एवं संगठन संबंधी आवश्यकताओं का क्रम

मास्लो विचारधारा के आधार पर एक व्यक्ति की व्यक्तिगत एवं संगठन संबंधी आवश्यकताओं के क्रम को निम्न उदाहरण में समझा जा सकता है:

व्यक्तिगत आवश्यकता क्रम		संगठन संबंधी आवश्यता क्रम
5– स्वयं संतुष्टि		5– लक्ष्यों की प्राप्ति
4– पद		4– जॉब
3– मित्रता		3– सहयोगियों से मधुर संबंध
2– आय		2– पेशन योजना
1–भूख		1–मूल वेतन

सारणी–1 **सारणी–2**

(1) **व्यक्तिगत आवश्यकता क्रम** : संगठन से बाहर व्यक्तिगत रुप में एक व्यक्ति को अभिप्रेरित करने वाली आवश्कताओं के क्रम को सारणी–1 में दिखाया गया है।

(2) **संगठन संबंधी आवश्यकता क्रमः** संगठन के अंदर एक व्यक्ति को अभिप्रेरित करने वाली आवश्यकताओं के क्रम को सारण–2 में दिखाया गया है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनेक हैं तथा उनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है। जैसे ही मनुष्य की पहली आवश्यकता पूरी होती है वह दूसरी आवश्यकता के बारे में चिन्तित हो जाता है, उसके बाद तीसरी और फिर यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि सभी आवश्यकताएं संतुष्ट नहीं हो जाती। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य की आवश्यकताएं ही उसके लिए अभिप्रेरण का काम करती हैं अर्थात् मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए स्वयं ही पूरी क्षमता से कार्य करना चाहता है।

- **आलोचना**

यदि विशेष अध्ययन न किया जाये तो मास्लो की आवश्यकताओं की प्राथमिकता संबंधी विचारधारा उचित प्रतीत होती है लेकिन विभिन्न शोधकर्ताओं ने इस विचारधारा को अपना मत देते हुए निम्न आलोचनाएं की हैं:

(i) मास्लो का आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम स्थायी नहीं है। यह परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

(ii) यह आवश्यक नहीं है कि एक समय पर एक ही वर्ग की आवश्यकताएं प्रबल हों और शेष महत्वहीन रहें।

मैक्ग्रेगर का 'एक्स' तथा 'वाई' सिद्धान्त

डगलस मैक्ग्रेगर ने मानवीय अभिप्रेरण के संबंध में ''एक्स'' विचारधारा तथा ''वाई'' विचारधारा की विवेचना की है। **मैस्लो** के आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम का समर्थन करते हुए संगठन में कर्मचारियों की अभिप्रेरण को बढ़ाने के लिए विकेंद्रीकरण तथा विस्तार अधिकर सौंपने, कार्य विस्तार, भागीदारी, प्रामर्शत्मक प्रबंध तथा प्रगति मूल्यांकन आदि प्रणलियों का सुझाव दिया है। मैक्ग्रेगर की एक्स विचारधारा की यह मान्यता है कि औसत कर्मचारी आलसी होते हैं कार्य से मन चुराते हैं उनमें कार्य करने की इच्छा नहीं होती, वे उत्तरदायित्वों को टाल देना चाहते हैं, वे आलसी होते हैं और संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति से उनका कोई संबंध नहीं होता। इसलिए किसी उपक्रम के निर्धारित लक्ष्यों की प्र्प्ति के लिए कर्मचारियों पर आवश्यक दबाव एवं नियंत्रण रखना पड़ता है। लेकिन कर्मचारी की प्रकृति के संबंध में ''एक्स विचारधारा'' की मान्यताएं ठीक नहीं हैं और मान्यताओं के आधार पर कर्मचारियों को अभिप्ररित करने के लिए आरंभ की गई प्रत्येक योजना सफलता प्राप्त नही कर सकती ।

उल्लेखनीय है कि सिद्धान्त एक्स आधुनिक समय में एकदम अवांछनीय हो गया है क्योंकि यह अधिनायकवादी परंपरा पर आधारित है जो आज संभव नहीं है। प्रबंधकों को साफ कर लेना चाहिए कि संगठन में काम कर रहा इन्सान सबसे संवेदनशील घटक है जिसका सावधानीपूर्व नियंत्रण किया जाना चाहिए। अस्थायी समय के लिए ही उत्पीड़न दवाब, डर या दंड के रास्तों से काम कराया जा सकता है। स्वयं मैक्ग्रेगर ने इस सिद्धान्त को खारिज करते हुए लिखा हैः

''सिद्धान्त एक्स का परंपरागत पहुंच इन गलत धाराणओं पर आधारित है कि क्या कारण है तथा क्या परिणाम है।''

सिद्धान्त ''वाई' की विचारधारा

सिद्धान्त ''वाई' सिद्धान्त ''एक्स'' से पूरी तरह विपरीत है। यह मान्यता है कि संगठन के उद्देश्य तथा व्यक्तियों के उद्देश्य बहुत महत्व के नहीं होते लेकिन अधिकांश संगठनों में मूल समस्या होती है संगठनात्मक उद्देश्यों के प्रति श्रमिकों की वचनबद्धता पाना। श्रमिकों की वचनबद्धता विशेषतः उच्च या बाह्य आवश्यकताओं की संतुष्टि से प्रत्यक्षतः संबंधित है।

वाई–विचारधारा मानवीय व्यवहार चित्रण प्रस्तुत करती है। इस विचारधार की मान्यता है कि जिस प्रकार व्यक्ति के लिए आराम करना और खेलना स्वाभाविक है, ठीक उसी प्रकार कार्य करना भी स्वाभाविक है। औसत कर्मचारी उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने की कला सीख सकते हैं। व्यक्ति स्वतः अपने से अधिक अनुभवी व्यक्तियों से निर्देशन प्राप्त कर सकते हैं एवं यदि उन्हें ठीक ढंग से अभिप्रेरित किया जाये तो वे सृजनशीलता से कार्य कर सकते हैं। मैकग्रेगर के अनुसार, ''एक प्रभावशाली संगठन वह है जिसमें निर्देशन एवं नियंत्रण के स्थान पर सत्यनिष्ठा एवं सहयोग हो और जिसके प्रत्येक निर्णय में, निर्णय से प्रभावित होने वाले को सम्मिलित किया जा सकता है।''

सारांश के रुप में, मैग्कग्रेगर का विचार है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रबंधकों को चहिए कि वे विकेंद्रीकरण, कार्य विस्तार, तथा भागीदारी व परामर्शत्मक प्रबंध प्रणलियों का प्रयोग करे और कर्मचारियों को स्वयं अपना कार्य तय करने तथा अपने दायित्व का स्व – मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करे। मैक्ग्रेगर के अनुसार, प्रबंधक एक शिक्षक, परामर्शदाता तथा सहयोगी तो है लेकिन अधीक्षक नहीं है ।

एक्स तथा वाई सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन

क्रमांक	एक्स सिद्धान्त	वाई सिद्धान्त
1	सामान्य व्यक्ति कार्य के प्रति सुस्त, आराम पसंद एवं अपरिपक्व होता है अर्थात वह काम से दूर रहना ही पसंद करता है।	सामान्य व्यक्ति के लिए बौद्धिक और शारीरिक कार्य उतना ही आवश्यक है जितना भोजन और आराम करना।
2	कार्य के प्रति विमुखता के कारण अधिकतर व्यक्तियों से कार्य करवाने के लिए उत्पीड़न, कठोर नियंत्रण एवं भय का वातावरण बनाना पड़ता है।	संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बाह्रा नियंत्रण या दंड का भय ही एकमात्र तरीका है।
3	सामान्य व्यक्ति में उत्तरदायित्व एवं पहल की भावना का अभाव पाया जाता है।	सामान्य व्यक्ति उपयुक्त परिस्थिति में न रहकर केवल दायित्व ग्रहण करने का इच्छुक होता है वरन उसमें पहल और कल्पना करने की भावना भी होती है। परंतु इसके लिए वातावरण का संतोषप्रद होना आवश्यक है।

4	सामान्य व्यक्ति महत्वाकांक्षी नहीं होता वरन निर्दशन एवं आदर्श प्राप्त करना पसंद करता है।	सामान्य व्यक्ति महत्वाकांक्षी होता है , स्वयं निर्देश प्राप्त करता है और नियंत्रित होता है।
5	सामान्य व्यक्ति सुरक्षा को सर्वाधिक महत्व देता है।	उद्देश्यों के प्रति वचनबद्धता, उद्देश्यों की प्राप्ति से प्राप्त होने वाले पारितोषिक से संबंधित होता है।
6	यह परंपरागत, कठोर, तानाशाही विचारधारा है।	यह विचार आधुनिक मानवीयता से ओत–प्रोत एवं सहभागिता में विश्वास करता है

हर्जबर्ग का अभिप्रेरण स्वास्थ्य सिद्धान्त या द्वि–घटक सिद्धान्त

हर्जबर्ग ने अभिप्रेरण की एक नवीन विचारधारा का विकास किया। इस विचारधारा को स्वास्थ्य या आरोग्य विचारधारा के नाम से जाना जाता है। हर्जबर्ग और उनके साथियों ने ''साइकोलोजिकल सर्विस, पिटसबर्ग'' में अनेक अध्ययनों के आधार पर इस विचारधारा का विकास किया। हर्जबर्ग ने स्पष्ट किया कि मनुष्य की आवश्यकताओं को दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है जो परस्पर एक–दूसरे से संबंधित है और मानवीय व्यवहार को अलग–अलग ढंग से प्रभावित करती है। अनुरक्षक, आरोग्यवर्धक अथवा असंतोषजनक तत्व का अभिप्राय उन तत्वों से है जिनकी विद्यमानता कर्मचारियों को अधिक उत्साह से काम करने के लिए प्रेरित नहीं करते लेकिन जिनकी अनुपस्थिति उनमें एक भयंकर एवं विस्फोटक असंतोष को जन्म देती हैं। ये प्रायः कार्य के वातावरण से संबंध रखते हैं और उनमें निम्नलिखित दस तत्व शामिल होते हैं:

1. कंपनी नीति तथा प्रशासन
2. तकनीकि निरीक्षण
3. अधीनस्थ के साथ पारस्परिक व्यक्तिगत संबंध
4. सहकर्मियों के साथ पारस्परिक संबंध
5. निरीक्षकों के साथ पारस्परिक व्यक्तिगत संबंध
6. पारिश्रमिक
7. कार्य सुरक्षा
8. व्यक्तिगत जीवन

9. कार्य करने की दशाएं
10. पदस्थिति

हर्जबर्ग ने संतुष्टि प्रदान करने वाले घटकों को 'अभिप्रेरित या तथ्य घटक या तत्प' के नाम से संबोधित किया है। ये सभी तत्व मनुष्य को अधिक कुशलता के साथ कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। इन सभी घटकों को हर्जबर्ग एवं उनके सहयोगियों ने कार्य के आंतरिक घटक माना है। ये तत्व प्रायः कार्य से संबंधित होते हैं। अतः इन्हें कार्य तत्व भी कहा जाता है। इसमें 6 तत्व शामिल है–

1. उपलब्धि या कार्य सफलता
2. मान्यता
3. उन्नति
4. स्वयं कार्य
5. प्रगति के अवसर
6. उत्तरदायित्व

हर्जबर्ग के सिद्धांत की भी अनेक विद्वानों ने आलोचना की है। कुछ विद्वान इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि हर्जबर्ग द्वारा चर्चित आरोग्यवर्धक या अनपुरक्षण तत्व केवल असंतुष्टिजनक होते हैं, संतुष्टिजनक नहीं। हर्जबर्ग के सिद्धांत उन्हीं परिस्थितियों में अनुकूल परिणाम देते है जब उसे उसी विधि से आयोजित किया जाये जिस विधि से हर्जबर्ग ने आयोजित की थी। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो आज भी व्यावसायिक संगठन में अभिप्रेरण को बढ़ाने के लिए अनुरक्षण या आरोग्यवर्धक तत्वों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

वस्तुत हर्जबर्ग का सिद्धान्त द्विघटकीय अभिकल्पना पर आधारित है अर्थात कार्य संतुष्टि की ओर ले जाने वाले घटक। इन घटकों के आधार पर इस परिणाम पर पहुचते हैं कि यदि कार्य चुनौतिपूर्ण हो तथा मनोरंजक हो, उसमें विकास की संभावनाएं हों तथा अपने विवेक से काम लेने का अधिकार हो तथा पेशे में आगे बढ़ने की योग्यता हो तथा किये गये काम के लिए उचित मान्यता प्राप्त होती हो तो लोग अभिप्रेरित अनुभव करते हैं।

क्लेटन एल्डफर की ई.आर.जी विचारधारा

येल विश्वविद्यालय के **क्लेटर एल्डफर** ने त्रिस्तरीय आवश्यकता प्राथमिकता सिद्धान्त प्रस्तावित करके मैस्लो के सिद्धान्त की पुनः अभिव्यक्ति की। ई.आर.जी का अर्थ है अस्तित्व, संबद्धता तथा विकास आवश्यकताएं। क्लेटन के अनुसार एक से अधिक स्तरों पर आवश्यकताएं किसी भी समय विशेष कर सक्रिय रहती है तथा आधार से प्राथमिकता में उच्च स्तर तक उनमें उर्ध्वाधर तथा अधोगामी गतिशीलन होता जाता हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी उच्च स्तरीय आवश्यकताओं को संतुष्ट न कर पाने के कारण परेशान सा रहता है तो वह उससे निचले स्तर की आवश्यकता की ओर वापिस आना तथा उनको पूरा करके ही संतुष्टि अनुभव करेगा।

अंग – एल्डफर की विचारधारा के निम्न चार अंग हैं –

(i) **संतुष्टि आरोह** – यह तत्व मास्लो की विचारधारा में भी लागू होता है। इसका आशय यह है कि जब निम्नस्तर की आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं तो उच्च स्तर की आवश्यकताएं जागृत हो जाती है तथा महत्वपूर्ण बन जाती हैं।

(ii) **नैराश्य या विफलता** – निराशा उस समय होती है जब व्यक्ति किसी आवश्यकता की पूर्ति में असफल हो जाता है। इस निराशा से व्यक्ति के लिए असंतुष्ट आवश्यकता और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है तथा वह अधिक शक्ति के साथ उसकी पूर्ति का प्रयास करता है जब तक कि वह लगातार सफल न हो जाये।

(iii) **नेराश्य पश्चगमन** – इस अवस्था में जब व्यक्ति को किसी आवश्यकता की पूर्ति के संबंध में बार–बार निराशा का अनुभव होता है तो वह निम्न स्तरीय आवश्यकता, जोकि उसे अधिक यथार्थपूर्ण एवं पहुंच योग्य लगती हैं, पर अपना ध्यान केंन्द्रित करने लगता है।

(iv) **अभिलाषा** : यह अंग स्पष्ट करता है कि विकास अपनी प्रकृति के कारण गहन रुप से संतृतकारी होता है। एक व्यक्ति जितना अधिक विकास करता है वह उतना ही और अधिक विकास करना चाहता है। अतः विकास आवश्यकता को जितना अधिक पूरा किया जाए वह महत्वपूर्ण बन जाती है तथा व्यक्ति उसकी पूर्ति के लिए उतना ही अधिक अभिप्रेरित होता है।

ई.आर.जी विचारधारा के निहितार्थ – एल्डफर का ई.आर.जी सिद्धान्त स्पष्ट दिशानिर्देशन नहीं करता। यह कहता है कि पहले कोई भी जीवन की आवश्यकताएं संतुष्ट करनी होती हैं। इस नियम के अनुसार आवश्यकताएं समान परिचालन करते हैं। यदि संतुष्टि के किसी विशेष मार्ग पर बाधाएं आती हैं तो वह उस जरुरत को भी संतुष्ट करने का प्रयत्न करेगा जो आसानी से संतुष्ट हो सकती हों। एल्डफर का सिद्धांत आवश्यकताओं के वर्गीकरण, उनके संबंध, संतुष्टि के उपरिगमन एवं प्रतिगमन को बताता है।

मैक्लेलैंड का प्रकट या अर्जित आवश्यकता सिद्धान्त

हावर्ड विश्वविद्यालय के डेविड मैक्लेलैंड ने जॉन अटकिन्सन तथा दो अन्य के साथ मिलकर 1948 मे इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह सिद्धान्त मर्रे के आवश्यकता सिद्धान्त में विश्वास रखता है । मर्रे ने लगभग दो दर्जन से अधिक आवश्यकताओं को परिभाषित किया। उनका विश्वास था कि अधिकांश आवश्यकताएं जन्मजात उत्पन्न होती हैं। आवश्यकताएं तभी लागू होती हैं जबकि बाहरी वातावरण की दशाएं भी अनुकूल हों, ये आवश्यकताएं एक–दूसरे से भिन्न भी हो सकती हैं। 1948 के उपरान्त मैक्लेलैंड का यही प्रयास रहा कि प्राप्ति के लिए आवश्यकताओं की खोज की जाए। काफी खोजबीन के उपरान्त इन्होंने तीन ऐसी प्रमुख आवश्यकताओं को वर्गित किया जो किसी व्यक्ति को कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती हों। ये आवश्यकताएं निम्न प्रकार से हैं :–

(i) **उपलब्धि के लिए आवश्यकता** – बाहरी प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों का सामना करने के लिए उपलब्धि प्राप्त करना अति आवश्यक हैं। इसके लिए अनेक प्रमाप निर्धारित करने पड़ते हैं। उपलब्धि किसी एक साधन से संभव नहीं है। इसके लिए अनेक तत्वों को ध्यान में रखना पड़ता है। श्रेष्ठ बनने के लिए इच्छा, प्रमापकों के मध्य संबंध स्थापित करने के लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। समाधान करने के लिए अपने–अपने उत्तरदायित्व को पूरा करना पड़ता है। आधुनिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यों को इस प्रकार लेकर चलना पड़ता है कि उनका समाधान न तो ज्यादा कठिन हो न सरल। उद्देश्यों को पूरा करने हेतु तथा उपलब्धि को प्राप्त करने लिए इस प्रकार का विश्वास उत्पन्न करना पड़ता है कि कमियों को दूर किया जा सके। उपलब्धि प्राप्त करने के लिए उन्हें कर्म पर विश्वास रखना पडता है न कि भाग्य पर। भाग्य के भरोसे छोड़कर किसी भी प्रकार की उपलब्धि नहीं प्राप्त की जा

सकती। उनका मुख्य आकर्षण उपलब्धि की तरफ होता है धन की तरफ नहीं। धन तो उनके लिए उपलब्धि का केवल एक साधन मात्र होता है। उन्हें आवश्यकता होती है कार्य में स्वतंत्रता एवं नियंत्रण की।

मैक्लेलैंड ने उपलब्धि के लिए आवश्यकता को महत्वपूर्ण माना है। उपक्रम ही अर्थिक विकास के मुख्य आधार होते है। वे देश जो कि उपलब्धि के क्षेत्र में आगे रहे हैं – जापान, पश्चिमी यूरोप, तथा यू.एस हैं। मैक्लेलैंड ने आर्थिक विकास के कारणों का महत्वपूर्ण अध्ययन किया तथा ऐसे कारणों का पता लगाया जो कि उपलब्धि तथा आर्थिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं इस क्षेत्र में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका विकसित देश हैं।

(ii) **शक्ति के लिए आवश्यक** : अन्य व्यक्तियों, दशाओं पर इस प्रकार नियंत्रण करना कि शक्ति की इच्छा उत्पन्न हो सके। अन्य व्यक्तियों को ऐसा व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित करना अथवा उनके अंदर ऐसी इच्छा उत्पन्न करने जैसा व्यवहार वे अन्यथा नहीं कर पाते। इसके अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है– विभिन्न संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की योग्यता जोकि शक्ति के संसाधन हों, जैसे – सूचना, ज्ञान, धन इत्यादि। परन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें नेतृत्व, राजनीतिक, कानूनी, व्यवसाय तथा शिक्षा जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है। अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने की शक्ति का होना नितांत आवश्यक है।

मैक्लेलैंड का कहना है कि संगठनों में प्रबंधकीय व्यवहार के बारे में स्पष्ट रुप से वर्णन किया जाना चाहिए। प्रबंधकगण को अपने अधिकारों का प्रयोग दूसरों के द्वारा किए गए कार्यों, निर्णय लेने, संसाधनों का उपयोग करने तथा घटनाओं को प्रभावित करने से करना पड़ता है।

मैक्लेलैंड ने विस्तार संबंधी व्यक्तित्व परीक्षणों के द्वारा उपरोक्त अभिप्रेरणाओं के सामर्थ्य को विभिन्न व्यक्तियों में मापा। मैक्लेलैंड के अनुसार कुछ व्यक्तियों में उपलब्धियों की तीव्र इच्छा होती है तथा वे किसी भी स्थिति में सर्वात्कृष्ट से काम को स्वीकार नहीं करते हैं। उच्च महात्वाकांक्षी भारी जोखिम वहन करते हैं तथा वे तब तक संतुष्ट नहीं होते जब तक कि उन्होंने कार्य की पूर्णता के लिए अधिकतम प्रयास नहीं किया हो। द्वितीय श्रेणी के व्यक्ति अर्थात ऐसे व्यक्ति जिन्हें संबद्धता या संबंध की अत्यधिक आवश्यकता होती है, प्रेम से

उत्पन्न होने वाले सुख की इच्छा करते हैं तथा वे घृणा किए जाने वाले कार्य से उत्पन्न होने वाले दुख से बचने का प्रयास करते हैं। तृतीय श्रेणी के व्यक्ति जिन्हें शक्ति की अत्याधिक आवश्यकता होती है, प्रभाव तथा नियंत्रण करने के इच्छुक होते हैं।

व्रूम की प्रत्याशा विचारधारा या सिद्धान्त

अभिप्रेरणा के संबंध में 1964 में विक्टर व्रूम ने प्रत्याशा विचारधारा का प्रतिपादन किया था। व्रूम का मत था कि संतुष्टि घटक सिद्धान्त कार्य अभिप्रेरण प्रक्रिया की व्याख्या स्पष्ट रुप से नहीं कर पाते। अतः विकल्प के रुप में उन्होंने अभिप्रेरण की प्रक्रिया विचारधारा का प्रतिपादन किया जो मनोविज्ञानिक **कुर्त लेविन, एडवर्ड टोलमेन** की संज्ञानात्मक अवधारणाओं तथा अर्थशास्त्र के चयन व्यवहार व उपयोगिता सिद्धान्तों पर आधारित है।

यह अभिप्रेरण, निष्पादन तथा कार्य संतुष्टि के कारणों को विभिन्न विवरण प्रदान करता है। इस सिद्धान्त के अंतर्गत व्यक्ति अपने कार्य का चयन करता है। सभी व्यक्ति अपने उद्देश्यों, आवश्यकताओं, मूल्यों, कुशलताओं, योग्यताओं तथा भूमिकाओं के संबंध में सतर्क रहते है। उनके अंदर भी अपने कुछ अरमान होते हैं। कुछ व्यक्तिगत गुण होते है जिनके आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त आवश्यकताओं, प्रयासों की प्राथमिकताओं तथा गणनाओं का अनुमान भी इन्हीं के आधार पर किया जाता है।

इस सिद्धान्त में मनुष्य की शक्ति को परिभाषित किया जाता है। यदि किसी श्रमिक का इस तथ्य में विश्वास है कि कठिन परिश्रम करना ही उच्च निष्पादन की कुंजी है, तो इसका आशय स्पष्ट है कि वह उच्च आशावादी है। यदि श्रमिक का यह दृढ़ विश्वास है कि उच्च निष्पादन से ही मजदूरी में वृद्धि होगी तो इसका आशय है कि उसमें तांत्रिकता है।

इस सिद्धान्त का निम्न रुपों में वर्गीकरण किया जा सकता है:—

(i) किसी व्यक्ति के कार्य का निष्पादन अर्थात उसकी क्षमता केवल उसके द्वारा किए गए प्रयासों पर ही निर्भर नहीं करती वरन उसकी योग्यताओं, कुशलताओं, कार्य के उद्देश्यों की स्पष्टता, पर्यवेक्षण की किस्म, कार्य प्रबंध तथा तकनीक पर भी निर्भर करती है। आशावाद का स्तर इन सभी तत्वों से प्रभावित होता है।

(ii) यह भी कोई वास्तविकता नहीं है कि व्यक्ति अभिप्रेरण के संबंध में स्वयं चयन करेंगे।

(iii) व्यक्ति को विश्वास होना चाहिए कि जो कार्य वह कर रहा है वह अवश्य पूरा होगा तथा आशावादी दृष्टिकोण का सामना किया जा सकता है। यदि अभिप्रेरण को उच्च स्तर तक पहुंचाना हो तो इन सभी शर्तों को पूरा करना चाहिए।

व्रूम के सिद्धान्त में तीन चर होते हैं जिनको एक समीकरण के रुप में दिया गया है। चूँकि मॉडल सभी तीनों चरों का एक मल्टीप्लायर है अतः इसे अभिप्रेरित निष्पति चयनों के समावेश वाला अत्यधिक सकारात्मक मूल्य का होना चाहिए। यदि कोई भी चर शून्य है तो अभिप्रेरित निष्पति की संभावना भी शून्य होगा।

Motivation = Valence x Expectancy x Instrumentality

(i) **कर्षण–शक्ति** – इसे Reward Performance के रुप में जाना जाता है। यह एक पुरस्कार पाने के लिए एक व्यक्ति की प्राथमिकता की शक्ति का बोध कराता है। यह वह मूल्य है जो वह परिणाम या प्रतिफल पर डालता है । एक परिणाम या पुरस्कार से जुड़ा मूल्य व्यक्तिनिष्ठ होता है क्योंकि यह हर व्यक्ति में परिवर्तित होता है। कर्मचारी अपनी आयु, शिक्षा तथा कार्य प्रकार के अनुसार Valence के प्रति सापेक्षिक मूल्य जोड़ते है। Valence सकारात्मक तथा ऋणात्मक प्राथमिकता पर निर्भर करता है। यदि वह अपने परिणाम के प्रति तटस्थ होता है तो उसका **Valence** शून्य होता है।

(ii) **प्रत्याशा** – यह प्रयास–निष्पति संभावना है उस मात्रा तक जिस तक व्यक्ति विश्वास करता है कि उसके प्रयास परिणाम तक ले जाएंगे अर्थात एक कार्य की पूर्णतः प्रत्याशा किसी गतिविधि से एक परिणाम मात्र इंगित करती है–संभावना की मात्रा। यदि कर्मचारी अनुभव करता है कि किसी परिणाम को पाने के लिए यदि वह प्रत्याशा को उच्च आंकता है तो वह अपेक्षत परिणाम पाने के लिए कहीं अधिक प्रयास डालेगा।

(iii) **करणत्व**– इससे Performance Reward probability का बोध होता है अर्थात जिस संभावना को निष्पति अपेक्षित प्रतिफल तक ले जाएंगी। उदाहरण के लिए, यदि एक संगठन का एक उपखाता अधिकारी समझता है कि सुपीरियर तथा उच्च निष्पति पदोनति है तथा पदोनति द्वितीय स्तरीय परिणाम। इस मामले में सुपीरियर निष्पति पदोनति पाने मे तंत्र व्यवस्था का मूल्य 0 से 1 के बीच कर सकता है।

उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि अभिप्रेरणाएं, Valence Expectancy तक गुणनफल हैं। प्रत्याशा मॉडल में ये तीनों घटक अनेक संयोजनों में विद्यमान हो सकते हैं तो Valence के दायरे तथा Expectancy तथा Instrumentality की मात्रा पर निर्भर करता है।

वह संयोजन जो सबसे सुदृढ अभिप्रेरणा उत्पन्न करता है उच्च सकारात्मक Valence, high expectancy तथा Instrumentality होता है। यदि वे तीनों ही निम्न होते है तो अभिप्रेरणा कमजोर होगी लेकिन अन्य मामलों में अभिप्रेरण मध्यम होगी। इसी तरह व्यवहार की ताकत नकारात्मक Valence तथा Expectancy तथा Instrumentality घटकों द्वारा निर्धारित की जाएगी।

मान्यताएं – व्रूम की विचारधारा निम्न मान्यतओं पर आधारित हैं –

(i) कर्मचारी की उपेक्षाओं तथा कर्षण–शक्ति में अंतर होता है।

(ii) व्यवहार का निर्धारण व्यक्ति एवं वातावरण के निश्चित घटकों से होता है।

(iii) कर्मचारी कार्य के लिए तभी तैयार होता है जब उसे वांछित परिणामों की आशा होती हैं।

(iv) व्यक्ति अपने व्यवहार सबंधी निर्णय चैतन्यता से करता है।

4.10 मौद्रिक तथा अमौद्रिक अभिप्रेरण

प्रेरणा अथवा प्रोत्साहन एक ऐसी शक्ति है जो एक व्यक्ति को लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। ये दो प्रकार के होते हैं–वित्तीय तथा अवित्तीय। वित्तीय तथा अवित्तीय प्रेरणाओं के संदर्भ में कहा जाता है कि, ''जिस प्रकार चलने के लिए दायें एवं बाएं दोनों पैरों की आवश्यता होती है उसी प्रकार श्रमिकों को अधिक कार्य के लिए प्रोत्साहित करने हेतु वित्तीय एवं अवित्तीय दोनों प्रकार की प्रेरणाओं की जरुरत होती है।'' अर्थात दोनों का समान महत्व है और दोनों का एक साथ लागू किया जाना जरुरी है।

वित्तीय अथवा मौद्रिक प्रेरणाएँ

वित्तीय प्रेरणाएँ वे हैं जिनका मूल्यांकन मुद्रा के रुप में किया जा सके। यहां मुद्रा में मुल्यांकन का आशय यह है कि जरुरी नहीं है कि सभी अभिप्रेरणाएँ नकदी के रुप में दी जाएं बल्कि कुछ ऐसी सुविधाएं भी प्रदान की जा सकती है जिनका मुल्यांकन मुद्रा में किया जा सकता

हो। उदाहरण के लिए, किराया मुक्त मकान, कार, नौकर आदि की सुविधा। वित्तीय प्रेरणाएँ प्रायः कर्मचारियों की शारीरिक तथा सुरक्षा आवश्यकताओं कों संतुष्ट करने में सहायक होती हैं। मुख्य वित्तीय प्रेरणाओं में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है।

(1) वेतन एवं भत्ते
(2) उत्पादकता–मजदूरी मिलान प्रेरणाएँ
(3) बोनस
(4) लाभ–भागिता
(5) सह–भागिता
(6) सेवा–निवृत्ति लाभ
(7) अनुलाभ

(1) **वेतन एवं भत्ते :**

वेतन एवं भत्ते प्रत्येक कर्मचारी के लिए प्रमुख मौद्रिक प्रेरणाएँ हैं। वेतन के अंतर्गत मूल वेतन, महंगाई भत्ता तथा अन्य भत्ते सम्मिलित होते हैं। वेतन एवं भत्ते मे प्रतिवर्ष होने वाली वृद्धि से कर्मचारी अभिप्रेरित होते हैं।

(2) **उत्पादकता–मजदूरी मिलान प्रेरणाएँ**

उत्पादकता को मजदूरी से जोड़कर कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है। अर्थात जितनी अधिक उत्पादकता होगी, उतनी ही अधिक मजदूरी का भुगतान किया जाएगा।

(3) **बोनसः**

बोनस का अभिप्राय कर्मचारियों को उनके समान पारिश्रमिक के अतिरिक्त किए जाने वाले ऐसे भुगतान से है जो उन्हें बेहतर सेवाएं प्रदान करने के बदले किया जाता है। यह योजना मालिकों तथा कर्मचारियों में मधुर संबंध स्थापित करने में सहायक है। आजकल बोनस के भुगतान का प्रचलन लगभग सभी उद्योगों में है। बोनस का भुगतना नकदी अथवा किसी अन्य रुप में हो सकता है। उदाहरण के लिए किसी कर्मचारी की सेवा से खुश होकर कम्पनी नकदी का भुगतान कर सकती है अथवा विदेश भ्रमण पर भेज सकती है।

(4) **लाभ–भागिताः**

एक व्यवसायिक संस्था द्वारा अर्जित लाभ को पक्षधारों के प्रयासों का परिणाम होता है – स्वामी पुंजी लगाते हैं और कर्मचारी अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं। स्वामियों को पुंजी विनियोग के फलस्वरुप लाभ तथा कर्मचारियों को सेवाओं के फलस्वरुप वेतन/मजदूरी प्राप्त होती है। अतः वैसे तो कर्मचारियों को अपनी सेवाओं के बदले पारिश्रमिक प्राप्त होता है लेकिन इस उम्मीद से कि वे अपनी पूरी क्षमता, मेहनत व ईमानदारी से काम करें, कभी–कभी, उन्हें कम्पनी के लाभों में भी हिस्सा दिया जाता है। इस प्रकार लाभ में दिए जाने वाले हिस्से की योजना को लाभ–भागिता कहते हैं।

(5) **सह–भागिता**

वास्तव में सह–भागिता लाभ–भगिता का विकसित स्वरुप है। सह–भागिता का आधार औद्योगिक प्रजातन्त्र तथा प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी है। इस योजना के अंतर्गत कर्मचारी अपनी सेवाएं प्रदान करने के साथ–साथ कम्पनी की समता पूंजी मे भी भागीदार होते हैं। परिणामस्वरुप, कर्मचारी अपने सामान्य पारिश्रमिक के अतिरिक्त लाभांश प्राप्त करते हैं तथा कम्पनी के प्रबन्ध में भी भागीदार होते हैं। कर्मचारियों को कम्पनी के समता अंश दो तरह से जारी किए जा सकते है।ः

(i) **नकदी के बदले।**

(ii) **नकदी में मिलने वाली प्रेरणा के बदले**ः जैसे–लाभ–भागिता योजना के अंतर्गत अंश जारी करना अथवा बोनस का अंशों के रुप में भुगतान करना।

(6) **सेवानिवृत्ति लाभ**

प्रत्येक कर्मचारी सेवानिवृत्ति के बाद के समय को लेकर चिंतित रहता है। यदि उसे इस समय के लिए आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर दी जाए तो उसका भविष्य सुरक्षित हो जाएगा। ऐसी स्थिति में वह निश्चित रुप से अभिप्रेरित होगा। भविष्य निधि तथा उपदान सेवा–निवृत्ति लाभ के सबसे अच्छे उदाहरण हैं।

(7) **अनुलाभ**

अनुलाभों का अभिप्राय ऐसी सुविधाएं से है जो कर्मचारी को अपने नियोक्ता से निःशुल्क प्राप्त होती हैं। जैसे – किराया मुक्त मकान, कार, नौकर की सुविधा आदि। ये सुविधाएं कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने मे अहम भूमिका निभाती हैं।

अवित्तीय अथवा अमौद्रिक प्रेरणाएँ

अवित्तीय प्रेरणाएँ वे है जिनका मुद्रा से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। ये प्रेरणाएँ मनुष्य में उच्चस्तरीय आवश्यकताओं: जैसे –सामाजिक, सम्मान व आत्म आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में सहायक होती है। डयूवि के अनुसार, 'अवित्तीय प्रेरणाएँ मासिक पुरस्कार के रुप में होती हैं।' चेस्टर वर्नार्ड का मत है कि, ''वह एक आम धाराणा की बात है कि भौतिक पुरस्कार (जैसे–मुद्रा) जीवन–यापन की सीमा के बाद प्रभावाहीन हो जाते हैं'। इसका अभिप्राय यह है कि वित्तीय रुप से सम्पन्न व्यक्तियों को अभिप्रेरित करने के लिए वित्तीय पुरस्कार के स्थान पर अवित्तीय पुरस्कार अधिक प्रभावी होते हैं। कर्मचारियों को अवित्तीय पुरस्कारों द्वारा अभिप्रेरित करने में निम्नलिखित घटक मुख्य रुप से सहायक हैं :

(1) पद
(2) संगठनात्मक वातावरण
(3) कैरियर बढ़ोतरी अवसर
(4) कार्य सम्पन्नता
(5) कर्मचारी पहचान कार्यक्रम
(6) सेवा सुरक्षा
(7) कर्मचारी भागीदारी
(8) कर्मचारी सशक्तिकरण

(1) **पद** : पद का अर्थ एक व्यक्ति के संगठन में स्थान से है। पद छोटा या बड़ा हो सकता है। पद का छोटा या बड़ा होना पद से जुड़े अधिकार, उत्तरदायित्व व अन्य सुविधाएं (जैसे – अलग केबिन, महंगा फर्नीचर, गाड़ी, चपरासी. पी.ए. आदि) पर निर्भर करता है। हर व्यक्ति बड़े पद की चाह रखता है। अतः कर्मचारियों के पद में बढ़ोतरी करके उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है। उच्च पद की प्राप्ति कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सम्मान की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

(2) **संगठनात्मक वातावरण** : संगठनात्मक वातावरण का अर्थ संगठन की कार्य – प्रणाली से है। इसके अंतर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता, पुरस्कार प्राप्ति, कर्मचारियों के महत्व, आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति बेहतर संगठनात्मक वातावरण में काम

करना पसंद करता है। प्रबन्धक बेहतर संगठनात्मक वातावरण उपलब्ध कराकर कर्मचारियों को अभिप्रेरित कर सकता है।

(3) **कैरियर बढ़ोतरी अवसर** : संगठन का प्रत्येक कर्मचारी अपने जीवन में तरक्की चाहता है। पदोन्नति तरक्की का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। पदोन्नति के लिए प्रशिक्षण एवं विकास सुविधाएं उपलब्ध करवाने की आवश्यकता होती है। अतः प्रबन्धक ये सुविधाएं उपलब्ध कराकर कर्मचारियों की पदोन्नति का रास्ता साफ कर देता है। पदोन्नति के अवसर उपलब्ध होने पर कर्मचारी निश्चित रुप से अभिप्रेरित होते हैं।

(4) **कार्य सम्पन्नताः** कार्य सम्पन्नता का अर्थ कार्य के महत्व को बढ़ाने से है। अर्थात ऐसी जॉब जिसमें :

(i) अधिकार, उत्तरदायित्व एवं चुनौतियों का क्षेत्र विस्तृत हो

(ii) उच्च–स्तरीय ज्ञान एवं अनुभव की आवश्यकता हो

(iii) व्यक्तिगत विकास के अवसर उपलब्ध हों, तथा

(iv) निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता हो।

कर्मचारी इस तरह की जॉब प्राप्त करके गर्व महसूस करते हैं अतः कार्य संपन्नता से लोगों की काम में रुचि बढ़ती है। और स्वतः ही अभिप्रेरित होने लगते हैं।

(5) **कर्मचारी पहचान कार्यक्रम** : प्रत्येक कर्मचारी की यह इच्छा होती है कि उसे संगठन के एक महत्वपूर्ण अंग के रुप में माना जाए। अर्थात उसकी पहचान हो और वह सबसे अलग दिखे। कर्मचारियों की पहचान स्थापित करने के कुछ उदाहरण निम्न हैं:–

(i) अच्छे कार्य निष्पादन के लिए कर्मचारियों को बधाई देना।

(ii) कर्मचारियों की उपलब्धियों को सूचना पटल पर प्रदर्शित करना अथवा संगठन की समाचार पत्रिका में छापना।

(iii) बेहतर निष्पादन के लिए संगठन के समारोहों में प्रमाण–पत्र वितरित करना।

(iv) स्मृति चिन्ह भेंट करना।

(v) मूल्यवान सुझावो के लिए पुरस्कृत करना।

(6) **सेवा सुरक्षा** : सेवा सुरक्षा एक महत्वपूर्ण अवित्तीय अभिप्रेरक है। सेवा सुरक्षा का अभिप्राय नौकरी स्थिरता से है। उदाहरण के लिए, एक कर्मचारी के मन में यदि यह

डर है कि उसे नौकरी के कभी भी हटाया जा सकता है तो वह दिल लगाकर कार्य नहीं करता और यही चिंता उसे परेशान करती रहती है। दूसरी ओर, यदि उसे इस बात का आभास है कि उसकी नौकरी स्थाई है और उसे अतिशीघ्र नहीं हटाया जाएगा तो वह चिंतामुक्त होकर कार्य करता है। फलस्वरुप उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। यही कारण है कि लोग अधिक वेतन वाली अस्थायी नौकरी की तुलना में कम वेतन वाली स्थाई नौकरी को प्राथमिकता देते हैं।

(7) **कर्मचारी भागीदारी** : कर्मचारी प्रबन्धकीय कार्यों में अपनी भागीदारी को देखकर प्रोत्साहित होते हैं। तथा उनकी मदद से तैयार की गई नीतियों को सफल बनाने में भी वे पूरा सहयोग देते हैं।

(8) **कर्मचारी सशक्तिकरण** : कर्मचारी सशक्तिकरण का अर्थ कर्मचारियों को अधिक निर्णय स्वतंत्रता देने से है। जब कर्मचारियों की निर्णय स्वतंत्रता बढ़ती है तो वे समझते हैं कि वे संगठन का एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। यह भावना उन्हें अभिप्रेरित करती है।

- **मौद्रिक एवं अमौद्रिक प्रेरणाओं में अंतर:**

अंतर का आधार	मौद्रिक प्रेरणाएँ	अमौद्रिक प्रेरणाएँ
1- नाप	इन्हें मुद्रा के रुप में नापा जा सकता है।	इन्हें मुद्रा के रुप में नहीं नापा जा सकता है।
2. उपयुक्तता	ये श्रमिक के लिए अधिक उपयुक्त है।	ये प्रबन्धकों के लिए अधिक उपयुक्त है।
3. संतुष्टि का स्तर	ये निम्न–स्तरीय आवश्यकताओं (रोटी,कपड़ा और मकान) का संतुष्ट करता है।	ये उच्च–स्तरीय आवश्यकताओं (सम्मान, पद व आत्म प्राप्ति) की संतुष्टि करता है।
4. देखने योग्य	वित्तीय प्रेरणाओं को देखा जा सकता है क्योंकि इन्हे मुद्रा के रुप में आंका जा सकता है।	अवित्तीय प्रेरणाओं को देखा नहीं जा सकता क्योंकि इन्हे मुद्रा के रुप में नहीं आंका जा सकता है।

4.11 सारांश

अतः स्पष्ट है कि संगठनात्मक ढांचा कितना ही अच्छा क्यों न हो, कितने ही शिक्षित अधिकारी नियुक्त किए गए हों, लेकिन यदि उनमें नेतृत्व योग्यता का अभाव है तो संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। नेता वह व्यक्ति होता है जो एक समूह के सभी व्यक्तियों पर अपना प्रभाव इस प्रकार रखता है कि वे सभी पूर्ण उत्साह तथा विश्वास के साथ पूरी क्षमता का प्रयोग करते हुए संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने में जुट जाते हैं। एक नेता की इस प्रकार की योग्यता अथवा गुण को ही नेतृत्व कहा जाता है। नेतृत्व के अंतर्गत अधिनस्थों का अभिप्रेरण इस ढंग से किया जाता है कि वे नेता के व्यवहार से प्रभावित होकर उसका अनुसरण करने लगते हैं और इस प्रकार अधिनस्थों के सहयोग से संस्था के उद्देश्यों को आसानी से पूरा कर लिया जाता है। एक प्रबंधक जिन पद्धतियों पर अपना प्रभाव स्थापित करता है, उन पद्धतियों अथवा विधियों को नेतृत्व कहा जाता है। विभिन्न प्रबंधकों की नेतृत्व शैलियाँ अलग–अलग हो सकती हैं। जब विद्यमान संगठन संरचनाः संगठन के उद्धेश्यों / नीतियों / कार्य–विधियां, उत्पादन विधिः कर्मचारियों के पद के स्तर आदि में भिन्नता लाई जाती है तो परिवर्तन होता है। संगठन के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए परिवर्तन करना आवश्यक होता है लेकिन कई बार इस तरह के परिवर्तन का कुछ लोगों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। परिणामतः वे इसे पसंद नहीं करते और इसका विरोध करते हैं। परिवर्तन को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए संभावित विरोध को पहले ही न्यूनतम करने का प्रयास करना चाहिए।

विभिन्न व्यक्तित्व, मूल्य प्रणाली, मनोवृत्ति एवं आवश्यताओं वाले व्यक्तियों को मिलाकर संगठन को लाभ पहुंचाना कठिन होता हैः– अतः प्रबंधक को उनकी आवश्यताओं, समस्याओं, मनोवृत्ति आदि को समझना होता है। कर्मचारी की कार्य क्षमता उसकी योग्यता पर निर्भर करती है। योग्यता बताती है कि कर्मचारी क्या कार्य कर सकता है और अभिप्रेरण यह इंगित करती है कि कर्मचारी क्या काम कर सकेगा। यदि सही अभिप्रेरण हो तो कर्मचारी का उत्पादन बढ़ेगा। अभिप्रेरण क्रिया कार्य को प्रेरित करने वाली होती है। संगठन की सफलता कर्मचारियों की रुचि पर निर्भर करती है। दूसरों से काम लेने की प्रक्रिया में बहुत कठिनाई आती है। संगठन का व्यवहार काम को प्रभावित करता है। अतः प्रबन्धक को जानना चाहिए कि लोग काम क्यों नहीं करते। भय एवं दण्ड की विचारधारा अभिप्रेरण की

सबसे पुरानी विचारधारा है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति पेट के लिए कार्य करता है। अतः यदि श्रमिकों एवं कर्मचारियों को भय दिखाया जाए कि काम न करने पर अथवा मंद गति से काम करने पर उन्हें सेवानिवृत्त कर दिया जाएगा तो वे घबरा कर कार्य करेंगे। इसी प्रकार दण्ड का भय भी श्रमिकों एवं कर्मचारियों से बरबस कार्य करा सकता है। औद्योगिक क्रांति की प्रारम्भिक अवस्था में यह विचारधारा सफल रही लेकिन कालांतर में इसका महत्व कम होता गया और वर्तमान समय में तो भय दिखाकर अथवा दंड देकर कार्य करवाना अमानवीय समझा जाने लगा है।

4.12 बोध प्रश्न

1. नेताओं तथा प्रबंधकों में अंतर भेद कीजिए।
2. नेतृत्व एवं प्रबंध में अंतर भेद कीजिए।
3. नेतृत्व शब्द की व्याख्या करें।
4. एक अच्छे नेता की विशेषताओं का वर्णन करें।
5. नेतृत्व का अर्थ एवं विशेषताएँ बताइये।
6. नेतृत्व प्रबन्ध को निर्देशन कार्य को एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। इस कथन के संबंध में नेतृत्व के महत्व का वर्णन कीजिए।
7. नेतृत्व की आवश्यकता केवल कम कुशल अधिनस्थों के लिए होती है। क्या आप सहमत हैं? अपने उत्तर के समर्थन में कोई चार कारण दीजिए।
8. सभी प्रबन्धक नेता होते हैं लेकिन सभी नेता प्रबनधक नहीं होते। इस कथन के संदर्भ में प्रबन्ध तथा नायकत्य में अंतर भेद कीजिए।
9. नेतृत्व प्रबंध के निर्देश कार्य का एक आवश्यक तत्व है। ऐसे चार कारणों का उल्लेख कीजिए जो यह स्पष्ट करे कि वह क्यों आवश्यक हैं।
10. ''परिवर्तन प्रकृति का नियम है।'' इस कथन के आधार पर संगठनात्मक परिवर्तनों के प्रकार समझाइए।
11. ''परिवर्तना का विरोध मानव प्रकृति में है।'' क्या आप इस कथन से सहमत हें। कर्मचारी संगठनात्मक परिवर्तन का विरोध क्यों करते हैं?
12. नियोजित परिवर्तन से आप क्या समझते हैं।'' इसके मुख्य तत्व क्या हैं?

13. एक प्रबंधक संगठन में परिवर्तन के विरोध को किस प्रकार नियोजित करता है? उदाहरण के साथ स्पष्ट कीजिए।

14. संगठन में परिवर्तन से क्या अभिप्राय है?

15. नियोजत परिवर्तनप क्या होता है?

16. परिवर्तन एजेंट एव परिवर्तन सलाहकार में क्या अंतर है?

17. अभिप्रेरण का अर्थ एवं महत्व बताइये।

18. 'अभिप्रेरण' शब्द का वर्णन कीजिए। एक संगठन में कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना क्यों महत्वपूर्ण है?

19. अभिप्रेरण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

20. प्रेरणा, अभिप्रेरण व अभिप्रेरक का अर्थ बताइये। मास्लो की आवश्यकता क्रम में प्रोत्साहन के सिद्धान्त की चर्चा कीजिए।

21. मास्लो की आवश्यकता–श्रृंखला अभिप्रेरण की समझ के लिए आधार समझी जाती है। इस आवश्यकता–श्रृंखला की अभिप्रेरण समझाइये।

22. एक कर्मचारी की 'सम्मान आवश्यकताओं का वर्णन कीजिए।

23. मास्लो के आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम की किन दो आधारों पर आलेचना की जा सकती है?

24. 'अभिप्रेरण द्वारा प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को उनकी पूर्ण कार्यकुशलता संगठन को प्रदान करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।'' इस कथन के संदर्भ में अभिप्रेरण का महत्व संक्षेप में समझाइए।

25. कर्मचारियों में उनकी योग्यता के उच्चतम स्तर तक काम करने की इच्छा पैदा करना निर्देशन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। वर्णन कीजिए कि यह संगठन की सफलता में कैसे भागीदारी करता है?

4.13 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- कुमार, आर. 2012, संगठनात्मक व्यवहार, प्रथम संस्करण, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- Robbins, P. Stephen, Judg,e A. Timothy, Sanghi, Seema, 2010, Essentials of Organizational Behavior, 10th Edition, Pearson Publication, Delhi.
- Luthans, Fred, 2011, Organizational Behavior: An Evidence-Based Approach, 12th Edition, Tata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.
- Mcshane, L.S., Von, Glinow A. M., Sharma R. R, 2010, Organisational Behaviour, 4th EditionTata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.

इकाई V : संघर्ष का प्रबंधन एवं कार्य दबाव

इकाई की रूपेरखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 संघर्ष का अर्थ एवं परिणाम

5.3 संघर्ष की प्रकृति एवं प्रकार

5.4 संघर्ष के समाधान की विधियाँ

5.5 कार्य दबाव का अर्थ एवं प्रकार

5.6 कार्य दबाव के कारण एवं प्रबंधन

5.7 सारांश

5.8 बोध प्रश्न

5.9 संदर्भ उपयोगी ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- संघर्ष की अवधारणा एवं इसके समाधान की विधियों का उल्लेख कर सकेंगे।
- कार्य दबाव के अर्थ, के कारण एवं प्रबंधन को समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

व्यक्तियों के बीच, एक समूह में विभिन्न सदस्यों के बीच तथा विभिन्न समूहों के बीच विभिन्न स्तरों पर विवाद उभरते रहते हैं। उनका कार्यों पर तथा सन्निहित व्यक्तियों तथा ग्रुपों की प्रभावोत्पादकता पर महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है। विवादों की प्रकृति तथ गहनता हर व्यक्ति तथा हर ग्रुप में अलग–अलग होती है तथा यह किसी भी प्रबन्धक को मुसीबत में डाल सकती है। कोई भी प्रबन्धक सबसे अधिक कठिनाई तब अनुभव करता है जब उसको काम पर लोगों या समूहों के बीच का अन्तरों या विवादों से निपटना पड़ता है। विवादों की विद्यमानता अनेक तरीकों से उसके काम को जटिल बना देती है। अतः यह बहुत महत्वपूर्ण

होता है कि प्रबन्धक द्वारा विवादों को भली प्रकार समझा जाए तथा उनको प्रभावी तौर पर संभालने का प्रयसा किया जाए।

5.2 संघर्ष का अर्थ एवं परिणाम

संघर्ष का अर्थ

संघर्ष दो पक्षधरों के मध्य विचारों का परिणाम होते हैं। जहां दो या अधिक व्यक्ति काम करते हों वहां विचारों का मतभेद होना स्वाभाविक है। प्रत्येक संगठन व्यक्तियों का समूह होता है। अतः प्रत्येक सगठन में संघर्षों की उपस्थिति लगभग निश्चित है। अन्य शब्दों में, संघर्ष प्रत्येक संगठन के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। कुछ समय पूर्व प्रबंध विशेषज्ञ संबंधों को नकारात्मक दृष्टि से देखते थे और इन्हें किसी भी तरह दबाने की बात कहते थे। लेकिन आज इन्हें सकारात्मक दृष्टि से देखा जाने लगा है और सिफारिश की जा रही है कि इनका रचनात्मक उपयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, दो राजनैतिक दलों में से एक सत्ता पक्ष की भूमिका में तथा दूसरा विपक्ष की भूमिका में है। प्रायः देखा जाता है, कि सत्ता पक्ष जो भी फैसला लेता है विपक्ष उसका अपना विपरीत विचार प्रस्तुत करता है। यह एक संघर्ष की स्थिति है। सत्ता पक्ष इस स्थिति को दो तरह से देख सकता है। प्रथम, विपक्ष के साथ दुश्मन जैसा व्यवहार करते हुए उसके मत को दबाने की कोशिश करना (अर्थात संघर्ष के प्रति नकरात्मक दृष्टिकोण रखना)। द्वितीय, विपक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों पर कुछ सीख कर बेहतर सीख कर बेहतर प्रदर्शन करना (अर्थात संघर्ष के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखना)।

टूल बाक्स – 1
संघर्ष एक संगठन में दो या दो से अधिक लोगों अथवा समूहों के मध्य विचारों में भिन्नता को संघर्ष कहते हैं।

संघर्ष की परिभाषाएं

संघर्ष का अभिप्राय एक ऐसी विवादित स्थिति से है जो दो पक्षकारों के विचारों एवं हितों में मतभेद के कारण उत्पन्न होती हैं।

संघर्ष की मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

एस.पी.रॉबिन्स के अनुसार, " संघर्ष से आशय सभी प्रकार के विरोध व्यवहारों से है।"

जोसेफ रिट्ज़ के अनुसार, "एक संगठन में संघर्ष को सामान्य क्रियाओं में रुकावट अथवा व्यवधान के रुप में वर्णित किया जाता है जिसके परिणामस्वरुप व्यक्तियों अथवा समूहों को सामूहिक रुप से काम करने में असुविधा महसूस होती है।"

5.3 संघर्ष की प्रकृति एवं प्रकार

संघर्ष की प्रकृति

संघर्ष की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) **अनुभूति आवश्यक** : संघर्ष की स्थिति की जानकारी दोनों पक्षकारों को होनी जरुरी है। जिस विरोध की दूसरे पक्षकार को जानकारी न हो वह संघर्ष नहीं कहलाता। एक व्यक्ति के अंदर चलने वाला संघर्ष इसका अपवाद है।

(ii) **गतिशील प्रक्रिया** : संघर्ष एक गतिशील प्रक्रिया है। यह अचानक ही पैदा नहीं होता बल्कि इसे वास्तविक रुप तक पहुंचने के लिए एक के बाद एक अनेक सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं।

(iii) **मुद्दों पर आधारित** : कोई भी संघर्ष मुद्दा रहित नहीं होता। इसका किसी न किसी मुद्दे से संबंध अवश्य होता है। मुद्दा तथ्य, लक्ष्य, मूल्य, विधियों आदि के रुप में हो सकता है।

(iv) **बुराई होना आवश्यक नहीं**: यह आवश्यक नहीं कि संघर्ष एक बुराई ही हो। संघर्ष के नकारात्मक व सकारात्मक दोनों प्रभाव हो सकते हैं। इसको केवल एक बुराई मानना एक पुरानी विचारधारा और एक भूल है।

(v) **संगठन का अनिवार्य घटक**: एक संगठन में विभिन्न विशेषताओं वाले अनेक लोग काम करते हैं। उनके विचारों में भिन्नता होना स्वाभाविक है। इसे रोकना लगभग असंभव हैं। हां, इसे नियंत्रित अवश्य किया जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि संघर्ष संगठन का एक अनिवार्य घटक है।

(vi) **प्रबंधकीय गलतियों का परिणाम**: संघर्ष का मुख्य कारण प्रबंधकीय कमजोरी होता है। प्रबंध से संगठित ढांचे में कहीं न कहीं कमी रह जाती है तभी संघर्ष उत्पन्न होते हैं। संगठन ढांचे में कमियों के उदाहरण इस प्रकार हैं: कार्य–विभाजन में कमी, संसाधनों

के बंटवारे में पक्षपात, भारापर्ण की कमी, प्रबंध के स्तरों का आवश्यकता से कम या अधिक होना, आदि।

(vii) **न्यूनतम स्तर तक संघर्ष आवश्यक** : आधुनिक विचारकों का मत है कि एक न्यूनतम स्तर तक संघर्षों का होना जरुरी है। इनके अभाव में संगठन में ठहराव–सा आ जाता है और उसका विकास रुक जाता है।

(viii) **समाधान आवश्यक** : संघर्षों का समय रहते समाधान ढूंढ लेना चाहिए, अन्यथा इनके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं।

(ix) **अनेक प्रकार**: संघर्ष अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे – व्यक्तिपरक संघर्ष, अंतः वैयक्तिक संघर्ष, समूहपरक संघर्ष, अंतर्समूह संघर्ष, संगठनात्मक संघर्ष, संगठनात्मक संघर्ष, आदि।

(x) **दो पक्षकारों का होना आवश्यक नहीं**: संघर्ष के लिए जरुरी नहीं कि दो पक्षकार हों। एक ही व्यक्ति के अंदर विभिन्न विकल्पों के चयन को लेकर चल रही समस्या भी संघर्ष की श्रेणी में आते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.1 रिक्त स्थान भरो :
(i) ....दृष्टि में संघर्ष नहीं होना चाहिए।
(ii) ....दृष्टिकोण में संघर्ष आवश्यक है।
(iii) संघर्ष संगठन का..............घटक है।

संघर्ष के प्रकार

एक संगठन में अनेक लोग काम करते हैं। संगठन के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सभी लोग एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं। अथवा एक दूसरे से व्यवहार करते हैं। वे कभी व्यक्तिगत रुप में काम करते हैं तो कभी सामूहिक रुप में काम करते हैं। कभी एक व्यक्ति किसी एक समूह के साथ व्यवहार करता है तो कभी एक समूह का दूसरे समूह से व्यवहार होता है। इसी प्रकार व्यक्ति एक ही संगठन के विभिन्न स्तरों व विभागों में काम करते हुए एक–दूसरे से व्यवहार करते हैं। एक व्यक्ति जितने ढंगों से दूसरे व्यक्तियों से संपर्क में आता है उतने ही प्रकार के संघर्ष हो सकते हैं। संघर्ष के प्रकार निम्नलिखित होते हैं:

(i) व्यक्तिगत संघर्ष

(ii) अंतर्वैयक्तिक संघर्ष

(iii) समूहपरक संघर्ष

(iv) अंतर्समूह संघर्ष

(v) संगठनात्मक संघर्ष

I **व्यक्तिगत संघर्ष**

यद्यपि संघर्ष के लिए दो पक्षकारों का होना आवश्यक है लेकिन इसकी उत्पत्ति एक ही व्यक्ति के अंदर हो सकती है। यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जबकि एक व्यक्ति या तो अपने लक्ष्य अथवा अपनी भूमिका को लेकर किसी तरह की उलझन में होता है। यह एक ऐसी स्थिति है जब व्यक्ति यह नही समझ पाता कि क्या करे और क्या न करे।

टूल बाक्स – 2
व्यक्तिपरक संघर्ष इसका अभिप्राय उस संघर्ष से है जो संगठन के एक व्यक्तिगत सदस्य के अंदर पैदा होता है।

व्यक्तिपरक संघर्ष निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं:

(क) लक्ष्य संघर्ष

(ख) भूमिका संघर्ष

(क) **लक्ष्य संघर्ष** : लक्ष्य संघर्ष का अभिप्राय ऐसे संघर्ष से है जो उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति के समक्ष दो अथवा दो से अधिक लक्ष्यों में से किसी एक के चयन की समस्या हो। ये लक्ष्य विरोधी प्रकृति के, लेकिन लगभग समान परिणाम देने वाले होते हैं। व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि वह किस लक्ष्य को स्वीकार करे। उसे कभी पहला तो कभी दूसरा विकल्प बेहतर दिखाई देने लगता है। उसके मस्तिष्क में चल रही इस तरह की उथल– पुथल लक्ष्य संघर्ष को जन्म देती है। ये संघर्ष निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं:

(i) सादृश्य–सादृश्य संघर्ष

(ii) सादृश्य–परिवर्तन संघर्ष

(iii) परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष

टूल बाक्स – 3
लक्ष्य संघर्ष ऐसा संघर्ष जो उस समय उत्पन्न होता है जबकि एक व्यक्ति अनेक विकल्पों में से एक के चयन की समस्या में फंसा हो।

(i) **सादृश्य–सादृश्य संघर्षः** इस प्रकार के संघर्ष का जन्म उस समय होता है जब व्यक्ति के समक्ष दो अथवा दो से अधिक सकारात्मक लक्ष्य होते हैं। उसे उनमें से किसी एक का चयन करना होता है। यहां लक्ष्यों के सकारात्मक होने का अर्थ यह है कि व्यक्ति के लिए सभी लक्ष्य लगभग एक समान महत्व के होते हैं। उसके सामने समस्या यह होती है कि वह किसे स्वीकार करे और किसे अस्वीकार। उदाहरण के लिए, क्रय कर्मचारी को दो से किसी एक 'मार्किट एरिया' अथवा बाजार का चयन करना हे। वह दोनों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। लेकिन एक समय पर दोनों में से किसी एक को स्वीकार किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, उसकी परेशानी का कारण यह है कि उसे एक लक्ष्य (बाजार) को स्वीकार करने पर अन्य लक्ष्यों (बाजार) का परित्याग करना पड़ता है। व्यक्ति की इस तरह की उलझन ही सादृश्य–सादृश्य संघर्ष कहलाती है।

(ii) **सादृश्य–परिवर्तन संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब व्यक्ति के समक्ष लक्ष्य तो एक ही होता है लेकिन वह सकारात्मक व नकारात्मक दोनों तरह की विशेषताओं वाला होता है। ऐसी स्थिति में, व्यक्ति यह निर्णय नहीं ले पाता कि वह सकारात्मक पहलू को अधिक महत्व दे अथवा नकारात्मक पहलू को। व्यक्ति के मस्तिष्क में चल रहा इस तरह का सोच–विचार सादृश्य–परिवर्तन को जन्म देता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति की पदोन्नति की जा रही है। लेकिन यदि वह इसे स्वीकार करता है तो उसे कम्पनी के उस कार्यालय में जाना होगा जो उसके घर से बहुत दूर स्थित है। इस उदाहरण में 'पदोन्नति' सकारात्मक पहलू है जबकि 'घर से दूर' नकारात्मक। व्यक्ति के सामने प्रश्न यह है कि दोनों में से किस पहलू को अधिक महत्व दे। व्यक्ति के मस्तिष्क की यही उलझन सादृश्य – परिवर्तन संघर्ष है।

(iii) **परिवर्तन–परिवर्तन सादृश्य** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब व्यक्ति के पास दो नकारात्मक परिणाम देने वाले विकल्प उपलब्ध हों और उसे उनमें से किसी एक का चयन करना हो। ऐसी स्थिति में, दोनों विकल्पों के साथ नकारात्मक परिणाम जुड़े रहते हैं। जब व्यक्ति पहले विकल्प के नकारात्मक परिणाम से बचना चाहता है तो उसे दूसरे विकल्प का नकारात्मक परिणाम सहन करना पड़ता है तथा इसके विपरीत। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति की कम्पनी घाटे में जा रही है। कर्मचारी को विकल्प दिया जाता है ि कवह चाहे तो इसी कार्यालय मे कम वेतन पर कार्यरत रहे अथवा कम्पनी के किसी दूर के कार्यालय में बराबर के वेतन पर स्वेच्छा से चला जाए। दोनों ही विकल्पों में कर्मचारी को आर्थिक हानि होगी। व्यक्ति के मस्तिष्क में यह सोच–विचार चल रहा है कि किस नकारात्मक पहलू को अधिक महत्व दे। यही परिवर्तन–परिवर्तन सादृश्य संघर्ष है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि संगठनात्मक व व्यक्तिगत लक्ष्यों में एकीकरण स्थापित करने के लिए लक्ष्य संघर्ष का अध्ययन महत्वपूर्ण है। जहां तक सादृश्य–सादृश्य संघर्ष का प्रश्न है इस आसानी से हल किया जाता है और इसका संगठन पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत, सादृश्य–परिवर्तन संघर्ष व परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष संगठनात्मक व व्यक्तिगत लक्ष्यों में एकीकरण स्थापित करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। अतः प्रबंधकों द्वारा इनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और इसके हल करने में व्यक्ति की मदद करनी चाहिए।

(ख) **भूमिका संघर्ष** : संगठन में काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को एक विशेष भूमिका अदा करनी होती है। प्रत्येक भूमिका से लोगों की कुछ अपेक्षाएं जुड़ी होती हैं। अन्य शब्दों में, अन्य लोग उससे कुछ विशेष व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं। जब कोई व्यक्ति एक विशेष भूमिका अदा करते हुए, अन्य लोगों की अपेक्षाओं के अनुरुप, वयवहार नहीं कर पाता तो भूमिका संघर्ष का जन्म होता है।

भूमिका संघर्ष निम्नलिखित चार प्रकार के होते हैं :

(i) इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष (Inter-Sender Role Conflict)

(ii) इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष (Inter-Sender Role Conflict)

(iii) पर्सन भूमिका संघर्ष (Personal Role Conflict)

(iv) इंटर भूमिका संघर्ष (Inter Role Conflict)

टूल बाक्स – 4
भूमिका संघर्ष इसका अभिप्राय उस संघर्ष से हे जिसके अंतर्गत व्यक्ति अपनी भूमिका में अन्य लोगों की अपेक्षाओं के अनुरुप व्यवहार नहीं कर पाता।

(i) **इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति को ऐसा काम करने के लिए कहा जाए, जो उसकी पहुंच से बाहर हो, अथवा ऐसी सीमाएं निर्धारित करना जिनके रहते काम को पूरा करना असंभव हो, अथवा काम को पूरा करने के लिए पर्याप्त समय व संसाधन उपलब्ध न हों। उदाहरण के लिए, बिक्री प्रबन्धक द्वारा बिक्रीकर्ता को कहा गया कि बिक्री को दुगना करना हैं और साथ ही यह भी कहा गया कि न तो माल उधार बेचोगे, न ही किसी तरह की छूट दोगे और न ही विज्ञापन पर अधिक खर्चा करोगे। ऐसी स्थिति में बिक्रीकर्ता बिक्री प्रबन्धक की अपेक्षाओं के अनुरुप व्यवहार नहीं कर सकता। यही इंटरा–सेंडर भूमिका संघर्ष है। (नोट– यहां सेंडर का अर्थ अपेक्षा रखने वाले व्यक्ति से है जो संख्या में एक ही होता है)।

(ii) **इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति की भूमिका से संबंधित दो या दो से अधिक लोग उससे विरोधी अपेक्षाऐं रखते हों। उदाहरण के लिए एक पर्यवेक्षक, प्रबन्धकों व श्रमिकों के बीच की कड़ी होता है। वह दोनों की विरोधी अपेक्षाओं में फंसा रहता है। अर्थात वह न तो प्रबन्धकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है और न ही श्रमिकों की। माना एक ओर, प्रबन्धक चाहते हैं कि श्रमिकों से सख्ती से व्यवहार किया जाए जबकि दूसरी ओर, श्रमिक चाहते हैं कि उनके साथ नरमी से व्यवहार किया जाये। ऐसी स्थिति, इंटर–सेंडर भूमिका संघर्ष को जन्म देती है। (नोट–यहां सेंडर अर्थात अपेक्षा रखने वाले लोग दो या दो से अधिक होते हैं।)

(iii) **पर्सन भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति को ऐसा काम करने के लिए कहा जाए जो उसके स्वयं के मूल्यों के विरुद्ध हो। उदाहरण के

लिए, कंपनी का मुख्य कार्यकारी अधिकारी अपने वित्त प्रबन्धक को एक ऐसा काम सौंपता है जिसे किसी सरकारी अधिकारी को रिश्वत देकर करवाया जाना है। रिश्वत देना वित्त प्रबन्धक के मूल्यों के विरुद्ध है। ऐसी स्थिति में उसके मस्तिष्क में एक संघर्ष उत्पन्न होगा जिसे पर्सन भूमिका संघर्ष कहते हैं। यहां संघर्ष की उत्पत्ति का कारण यह है कि वित्त प्रबन्धक न तो अपने बॉस को काम से इंकार कर सकता है और न ही उसके मूल्य उसे वह काम करने की इजाज़त देते हैं।

(iv) **इंटर भूमिका संघर्ष** : यह संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब किसी व्यक्ति को अनेक विरोधी भूमिकाऐं अदा करनी हों। उदाहरण के लिए, महिला किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारी भी है वे एक माँ भी है। यदि कार्यालय में अधिक काम होने पर वह ज्यादा समय लगाती है तो माँ होने के नाते अपने बच्चों को समय नहीं दे पाती। यह स्थिति इंटर भूमिका संघर्ष को जन्म देने वाली है।

- **भूमिका संघर्ष के लिए उत्तरदायी घटक** :
  - (i) एक विशेष भूमिका से लोगों की अपेक्षाओं में अस्पष्टता।
  - (ii) एक विशेष भूमिका से लोगों की विरोधी अपेक्षाएं।
  - (iii) व्यक्ति को अपनी भूमिका की स्पष्ट जानकारी न होना।
  - (iv) व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुरुप जॉब न मिलना।
  - (v) व्यक्ति का स्वयं का व्यक्तित्व।
  - (vi) असंतुष्ट कार्य–विभाजन।
  - (vii) पक्षपातपूर्ण अधिकार–वितरण।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भूमिका संघर्ष से तनाव पैदा होता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रबन्धक स्पष्ट व दो–तरफा संदेशवाहन करके भूमिका संघर्ष की स्थिति को टाल सकते हैं।

II अंतर्वैयक्तिक संघर्ष

प्रत्येक संगठन में अनेक लोग काम करते हैं। उन्हें अपनी–अपनी क्रियाएं पूरी करने के लिए एक –दूसरे से व्यवहार करना होता है। आपसी व्यवहार के दौरान विभिन्न मुद्दों को लेकर विचारों में मतभेद होना स्वाभाविक है। जैसे–एक व्यक्ति किसी एक विकल्प के पक्ष में

हो सकता है तथा दूसरा किसी दूसरे विकल्प के। इस तरह के मतभेदों के फलस्वरुप होने वाले संघर्ष को ही अंतर्वैयक्तिक संघर्ष कहते हैं। संक्षेप में, दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य होने वाले व्यवहार के फलस्वरुप होने वाले संघर्ष को अंतर्वैयक्तिक संघर्ष कहते हैं। उदाहरण के लिए, गुणवत्ता नियंत्रक की जॉब दूसरों के काम में कमी निकालना है। अपने काम में कमी निकाली जाए, यह बात किसी भी कर्मचारी को शायद ही हजम हो। ऐसी स्थिति में, सभी कर्मचारी गुणवत्ता नियंत्रक के प्रति गलत धारणा बना लेंगे और फलतः संघर्ष का जन्म होगा। ये संघर्ष प्रायः बॉस व अधीनस्थ के मध्य, विभिन्न प्रबन्धकीय स्तरों पर काम करने वाले लोगों के मध्य, व विभिन्न प्रबन्धकों के मध्य हो सकते हैं। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि यह संघर्ष अनेक रुपों में हो सकता है। इसके मुख्य रुप निम्नलिखित हैं।

टूल बाक्स – 5
अंतर्वैयक्तिक संघर्ष इसका अभिप्राय ऐसे संघर्ष से है जो एक संगठन के दो या अधिक लोगों में चयन सम्बन्धी मतभेदों के कारण उत्पन्न होता है।

(i) लम्बवत् संघर्ष

(ii) समतालीय संघर्ष

(iii) विकर्णीय संघर्ष

(i) **लम्बवत् संघर्षः** वरिष्ठ व अधीनस्थ के मध्य होने वाले संघर्ष को लम्बवत् संघर्ष कहते हैं। क्योंकि वरिष्ठ व अधीनस्थ के मध्य लम्बवत् संबंध होता है इसलिए इनके होने वाले संघर्ष को लम्बवत् संघर्ष कहते हैं। यह संघर्ष प्रायः उस समय उत्पन्न होते हैं जब वरिष्ठ अधीनस्थ के व्यवहार को नियंत्रित करना चाहता है और अधीनस्थ उसका विरोध करता है।

(ii) **समतालीय संघर्षः** यह संघर्ष संगठन में एक ही स्तर पर काम करने वाले विभिन्न लोगों के मध्य होता है इसका मुख्य कारण संसाधनों का बंटवारा है। जब मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा विभिन्न विभागों में संसाधनों (जैसे– मानव–शक्ति, धन व अन्य सुविधाएं) का बंटवारा किया जाता है तो सभी विभागाध्यक्ष चाहते हैं कि सबसे अधिक संसाधन उन्हें प्राप्त हो जाएं। यह स्थिति उनमें संघर्ष पैदा करती है।

(iii) **विकर्णीय संघर्षः** यह संघर्ष उन लोगों के मध्य होता है जिसका संगठन से कोई प्रत्यक्ष संबंध न हो। जैसे– एक विभाग व दूसरे विभाग के पर्यवेक्षक के मध्य कोई संबंध नहीं होता है। यदि दोनों में किसी बात को लेकर मतभेद हो जाए तो इस स्थिति से उत्पन्न संघर्ष विकर्णीय संघर्ष कहलाएगा। यह संघर्ष प्रायः विभिन्न लोगों के स्वभाव में भिन्नता के कारण पैदा होता है।

- **अंतर्वैयक्तिक संघर्ष के लिए उत्तरदायी घटक**

(i) संगठन में संसाधनों का सीमित मात्रा में होना।

(ii) संगठन में विभिन्न लोगों के मूल्यों में अंतर होना।

(iii) विभिन्न लोगों के पास एक ही मुद्दे से संबंधित भिन्न सूचनाएं होना।

(iv) उचित संदेशवाहन पद्धति का न होना।

(v) लोगों का बड़े–छोटे पदों पर आसीन होना।

(vi) लोगों का अलग धर्म, जाति क्षेत्र व लिंग से संबंधित होना।

(vii) एक–दूसरे की व्यक्गित भावनाओं को ठेस पहुंचाना।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र..2 भूमिका संघर्ष से आप क्या समझते हैं?
प्र.3 परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष का कोई उदाहरण दीजिए।
प्र.4 अंतवैयक्तिक संघर्ष के क्या उच्चस्तरीय घटक हैं?

III समूहपरक संघर्ष :

प्रत्येक समूह अनेक लोगों की एक इकाई होती है। समूह का प्रत्येक सदस्य एक विशेष पद पर काम करता है। समूह की क्रियाओं को सुचारु रुप से चलाने के लिए समूह के मूल्य व परंपराएं निश्चित किए जाते हैं। जब समूह का कोई सदस्य उसके मूल्य अथवा परंपराओं की अवहेलना करता है तो अवहेलना करने वाले व अन्य सदस्यों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। यह समूहपरक संघर्ष कहलाता है। उदाहरण के लिए, माना कि एक समूह ने निर्धारित किया कि उसके सभी सदस्य पूरी ईमानदारी से काम करेंगे। समूह के एक सदस्य को छोड़कर शेष सभी इसका पालन करते हैं। ऐसी स्थिति में, उस एक सदस्य का

समूह के अन्य सदस्यों के साथ मतभेद पैदा हो जाएगा जो अंत में समूहपरक संघर्ष का रुप धारण कर लेगा।

कई बार समूहपरक संघर्ष तथा अंतर्वैयक्तिक संघर्ष एक जैसे लगते हैं। यह बिलकुल ठीक है क्योंकि दोनों ही व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के साथ संघर्ष होता है। लेकिन दोनों में भिन्नता यह है कि समूहपरक संघर्षों मे ंदोनों पक्षकारों का एक विशेष समूह का सदस्य होना जरुरी है। जबकि अंतर्वैयक्तिक संघर्ष किन्ही भी दो लोगों के मध्य हो सकता है। अर्थात अंतर्वैयक्तिक संघर्ष का एक विशेष समूह का सदस्य होना जरुरी नहीं है।

कई बार देखा जाता है कि समूह के सभी सदस्य किसी विशेष मुद्दे पर दो भागों में बंट जाते है। इस प्रकार अब एक समूह के स्थान पर दो समूह बन जाते है और संघर्ष व्यक्तियों के स्थान पर दो समूहों के मध्य होने लगता है। अब इसे समूहपरक संघर्ष नहीं बलिक 'समूहों के बीच संघर्ष' कहा जाएगा।

(IV) अंतर्समूह संघर्ष

प्रत्येक संगठन में अनेक समूह होते हैं। संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सभी समूह एक –दूसरे के संपर्क में आते हैं। संपर्क के दौरान विभिन्न मुद्दों पर मतभेद होना संभव है। दो समूहों में किसी मुदे पर हुए मतभेद के फलस्वरुप उत्पन्न संघर्ष को अंतर्समूह संघर्ष कहते हैं। उदाहरण के लिए, विपणन व उत्पादन टीम के मध्य संघर्ष अंतर्समूह संघर्ष कहलाएगा।

- **अंतर्समूह संघर्ष के लिए उत्तरादायी घटक**
  - (i) विभिन्न समूहों के लक्ष्यों में भिन्नता।
  - (ii) विभिन्न समूहों में संसाधनों के बंटवारे में पक्षपात।
  - (iii) जॉब से संबंधित उत्तरदेयता की जानकारी न होना।
  - (iv) पारितोषिक पद्धति में अविश्वास का संबंध होना।
  - (v) विभिन्न मुद्दों की क्रियाओं का एक दूसरे पर निर्भर होना।

V **संगठनात्मक संघर्ष**

संगठनात्मक संघर्ष का अभिप्राय ऐसे संघर्षों से है जो संगठन स्तर पर होता है। यह संघर्ष निम्न दो प्रकार का होता है:

(क) संगठनात्मक संघर्ष

(ख) अंतर्संगंठन संघर्ष

(क) **संगठनात्मक संघर्ष** : एक संगठन के अंदर होने वाले संघर्ष संगठनात्मक संघर्ष की श्रेणी में आते हैं। ये व्यक्तिगत संघर्ष, अंतर्वैयक्तिक संघर्ष व अंतर्समूह संघर्ष हो सकते हैं। यहां इन्हीं संघर्षो को संगठन ढांचे के संदर्भ में देखा जाता है। संगठन ढांचे पर आधारित संघर्ष निम्नलिखित चार प्रकार के हो सकते हैंः

(i) कार्यात्मक संघर्ष

(ii) पदनाक्रम संघर्ष

(iii) औपचारिक–अनौपचारिक संघर्षं

(iv) रेखा–स्टॉफ संघर्ष

(i) **कार्यात्मक संघर्षः** प्रत्येक संगठन में अनेक कार्य किए जाते हैं, जैसे – वित्त, क्रय, विक्रय, उत्पादन, सेविवर्गीय, आदि। इन कार्यों के आधार पर ही विभाग बनाए जाते हैं। इन विभागों के मध्य, होने वाले संघर्षों को कार्यात्मक संघर्ष कहते हैं।

(ii) **पदानुक्रम संघर्षः** ऐसे संघर्ष संगठन के विभिन्न स्तरों के मध्य पाए जाते हैं। इनके मुख्य उदाहरण इस प्रकार हैं : संचालक मंडल व मुख्य कार्यकारी अधिकारी के मध्य संघर्ष, मुख्य कार्यकारी अधिकारी व विभागाध्यक्षों के मध्य संघर्ष, विभागाध्यक्ष व पर्यवेक्षकों के मध्य संघर्ष।

(iii) **औपचारिक–अनौपचारिक संघर्ष** : प्रत्येक संगठन में दो प्रकार के समूह पाए जाते हैं– औपचारिक व अनौपचारिक। इन समूहों में लक्ष्यों, मूल्यों, व परंपराओं को लेकर संघर्ष चलते रहते हैं ये औपचारिक–अनौपचारिक संघर्ष कहलाते हैं।

(iv) **रेखा–स्टॉफ संघर्षः** 'रेखा–स्टॉफ' संगठन संरचना का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। इसके अंतर्गत रेखा अधिकारियों के साथ स्टॉफ सदस्य (अर्थात विशेषज्ञ) भी काम करते हैं। इनमें प्रायः प्रतिष्ठा, अधिकार, कार्य अस्पष्टता, उत्तरदेयता अस्पष्टता, आदि को लेकर संघर्ष होते हैं।

(ख) **अंतर्सगठन संघर्षः** समाज में अनेक संगठन काम करते हैं। संगठन अनेक कारणों से एक – दूसरे के संपर्क में आते रहते हैं। जैसे – दो कम्पनियों जिनके उत्पाद एक जैसे हैं, लगातार एक–दूसरे पर नज़र रखेंगी। कभी वे एक दूसरे से बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराएंगे, कभी एक दूसरे से बेहतर तकनीक का प्रयोग करेंगे तथा कभी वे

एक–दूसरे के अच्छे कर्मचारियों को अपनी ओर आकर्षित करेंगे। उनके मध्य चल रही इस तरह की होड़ कुछ और नही बल्कि अंतर्संगठन संघर्ष है। साधारण शब्दों में इस तरह के संघर्ष को प्रतियोगिता कहा जाता है। इससे वे समाज को अनेक लाभ प्राप्त होते हैं: जैसे –नये–नये उत्पादों का बाजार में आना, अच्छी व सस्ती वस्तुएं उपलब्ध होना, मानव–शक्ति के बाजार मूल्य में वृद्धि होना, लोगों के जीवन–स्तर में सुधार होना, आदि।

अंतर्समूह संघर्ष प्रायः एक जैसा उद्देश्य रखने वाले दो संगठनों के मध्य उत्पन्न होते हैं लेकिन यह संघर्ष एक संगठन व सरकारी एजेंसी के मध्य भी उत्पन्न हो सकते हैं। अंतर्समूह संघर्ष चाहे किसी भी तरह का हो, उसे सामाजिक परंपराओं व सरकारी अधिनियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र..5 रिक्त स्थान भरो : (i) 'रेखा स्टॉफ' ....संघर्ष को जन्म दे सकता है। (ii) एक संगठन में दो से अधिक व्यक्तियों में मतभेद को ....संघर्ष कहते हैं

5.4 संघर्ष के समाधान की विधियाँ

जैसा कि स्पष्ट है कि प्रत्येक संगठन में संघर्षों का होना स्वाभाविक है। यह भी निश्चित है कि यदि इनको नियंत्रित न किया जाए तो इनके विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं। अतः समय रहते इनका समाधान खोज लेने में ही भलाई है। संघर्ष समाधान की मुख्य विधियां निम्नलिखित हैं:–

(i) **टालना**: इस विधि के अंतर्गत, प्रबन्धक संघर्ष की ओर से आंख बंद कर लेता है। उसकी यह मान्यता रहती है कि यदि संघर्ष को ज्यादा महत्व न दिया जाए तो वह स्वयं ही समाप्त हो जाता है। उसकी ऐसी सोच उस समय होती है जबकि कर्मचारी मुद्दों को लेकर उलझे रहते हैं और धर्म, जाति, राजनीति, आदि से प्रेरित होते हैं। ध्यान रहे कि यह विधि संगठनात्मक संबंधों के लिए उपयोगी नहीं है।

(ii) **समूहों का पुनर्गठन** : इस विधि के अंतर्गत, प्रबन्धक समूहों में सदस्यों की अदली–बदली करता है। उसकी यह मान्यता रहती है कि एक समूह में एक जैसी

विशेषताओं वाले सदस्य होने चाहिए। समान हित, उद्देश्य एवं आदतों के कारण संबंधों में कमी आती है। उनका सभी समस्याओं के प्रति दृष्टिकोंण रहता है। इस विधि द्वारा समूहों के मध्य होने वाले संबंधों को आसानी से सुलझाया जा सकता है।

(iii) **समूहों की आपसी–निर्भरता को कम करना**ः इस विधि के अंतर्गत, दो परस्पर निर्भर समूहों को स्वतन्त्रता प्रदान करके संघर्ष समाप्ति का प्रयास किया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि जब दो समूह एक–दूसरे पर निर्भर हों तो उनमें संघर्ष होने लगते हैं। प्रबंधक को ऐसा प्रयास करना चाहिए कि उनकी निर्भरता कम हो जाए, जिससे उनमें आपसी व्यवहार कम होंगे। परिणामतः संघर्ष भी कम हो जाएंगे।

(iv) **मतभेदों को दबाना**ः इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकारों पर एक विशेष समाधान स्वीकार करने का दबाव डाला जाता है। इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब अतिशीघ्र कोई निर्णय लेना हो और लोग एकमत न हो रहे हों। यह विधि अल्पकाल में तो सही परिणाम देती है लेकिन दीर्घकालीन में इसके विपरीत परिणाम हो सकते हैं। जिन लोगों को आज दबाया जाता है उनमें बदले की भावना जन्म ले लेती है, और वे अपना गुस्सा निकालने के मौके की तलाश में रहते हैं।

(v) **स्थानान्तरण**ः इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष समाप्त करने के लिए कर्मचारियों को एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्त्रित कर दिया जाता है। इससे संघर्ष के पक्षकारों में दूरी बढ़ जाती है। फलस्वरुप, पुराने सहकर्मियों में द्वेष समाप्त हो जाता है।

(vi) **शान्त करना**ः इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकारों के समक्ष सामूहिक हित के मुद्दे को प्रकाश में लाया जाता है और मतभेद के मुद्दों को दबाने का प्रयास किया जाता है। ऐसा करने से संघर्ष के पक्षकारों को लगने लगता है कि उनमें इतना मतभेद नहीं है जितना वे समझ रहे हैं। परिणामतः संघर्ष की तीव्रता में ढील आ जाती है।

(vii) **मूल्यवान लक्ष्यों को उभारना**ः मूल्यवान लक्ष्य का अभिप्रायः ऐसे लक्ष्य से है जो सर्वोत्तम हो और जिसे प्राप्त करने के लिए सभी लोगों का सहयोग वांछित हो। कोई एक व्यक्ति अथवा समूह इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे–संगठन के अस्तित्व को बनाए रखना एक मूल्यवान लक्ष्य है। इस विधि के अंतर्गत, जब लोगों में संघर्ष होता है तो उन्हें मूल्य लक्ष्य याद करवाया जाता है। इससे उन्हें लगता है कि यदि वे संघर्ष करेंगे तो मूल्यवान लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। संगठन का अस्तित्व

खतरे में पड़ जाएगा। इस डर से वे संघर्ष में ढील दे देते हैं और सहयोग करने लगते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जब संगठन के अस्तित्व का खतरा नज़र आने लगता है तो हड़ताल, तालाबंदी, आदि को वापिस ले लिया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसी स्थिति में कर्मचारी कम मजदूरों पर अधिक घंटों तक तथा अधिक कुशलता से काम करने को भी तैयार हो जाते हैं।

(viii) **समझौता** : इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकार या तो स्वयं समझौता कर लेते हैं अथवा उनका बाहरी हस्तक्षेप की मदद से समझौता करवा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, समझौता करवाने के लिए पंचनिर्णय व सौदेबाजी विधियों को भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इस विधि में संघर्ष के पक्षकारों को कुछ न कुछ अवश्य त्यागना पड़ता है। इसमें बिना हार–जीत के ही संघर्ष का समाधान निकाला जाता है। प्रबंध व श्रमिकों के मध्य बोनस आदि को लेकर होने वाले संघर्ष प्रायः इसी विधि से हल किए जाते हैं।

(ix) **अंतर्सबंधों का पुनर्गठनः** इस विधि के अंतर्गत, संघर्ष के पक्षकारों के मध्य होने वाले प्रत्यक्ष व्यवहारों में कमी लाई जाती है। उनके बीच में व्यवहार के लिए एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाता है। जब भी दोनों पक्षकारों को आपस में कोई व्यवहार करना है तो वे मध्यस्थ के माध्यम से करते हैं। जब अनेक प्रयासों के बाद भी समाधान न हो तो कुछ समय के लिए इस विधि का प्रयोग लाभकारी रहता है। मध्यस्थ ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो सभी के लिए आदरणीय हो।

(x) **मतभेदों में तेजी लानाः** इस विधि के अंतर्गत, जब प्रबंधक देखता है कि संघर्ष के पक्षकार मानने को तैयार नहीं है तो वो उन्हें ऐसा मौक्का उपलब्ध करवाता है जहां वे खुलकर एक –दूसरे के सामने आ जाएं। संघर्ष के पक्षकार जीत प्राप्त करने के लिए अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं। वाद–विवाद के दौरान झगड़े के कारण व समाधान के उपाय दोनों सामने आ जाते हैं। प्रबंधक को इस विधि का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि यदि स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाए तो संघर्ष बढ़ भी सकता है।

(xi) **समस्या समाधानः** इस विधि के अंतर्गत, प्रबंधक मतभेदों के फलस्वरुप उत्पन्न हुई ऊर्जा का प्रयोग विनाशकारी क्रियाओं के स्थान पर रचनात्मक क्रियाओं के लिए करने

का प्रयास करता है। संघर्ष के कारणों को गहराई से समझने का प्रयास किया जाता है। संघर्ष के सभी पक्षकारों का पूरा आदर किया जाता है। बातचीत का उचित रास्ता तैयार करके सभी पक्षकारों को संतुष्ट करना इस विधि की मुख्य विशेषता है। इस विधि को लागू करने के लिए बाहरी विशेषज्ञ की मदद ली जाती है। वह सभी पक्षकारों को अपने विश्वास में लेकर बातचीत के लिए आधार तैयार करता है। बातचीत के दौरान मुख्य समस्या की जानकारी प्राप्त करके उसका हल निकालने में उनकी मदद करता है।

(xii) **संगठन का पुनर्गठनः** इस विधि के अंतर्गत संगठन ढांचे के एक बिंदु में सुधार किया जाता है जो संघर्ष का मूल कारण हो। संगठन ढांचे में अनेक बिंदु होते हैं जहां संघर्ष की संभावना हो सकती है, जैसे– कार्य–विभाजन, भारर्पण, प्रबंध के स्तर, आदि। इनमें से जिस बिंदु पर संघर्ष हो, उसी में उचित परिवर्तन करके संघर्ष को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

(xiii) **संसाधनों में वृद्धिः** इस विधि के अंतर्गत, सीमित संसाधनों का उचित प्रबंध करके संघर्ष का समाधान किया जाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि सीमित संसाधनों की प्राप्ति के लिए विभिन्न विभाग संघर्ष की चपेट में आ जाते हैं। ऐसी दशा में संसाघनों का विस्तार करके संघर्ष को दूर किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.6 क्या स्थानान्तरण से संघर्ष में कमी लाई जा सकती है?
प्र.7 मूल्यवान लक्ष्यों से संघर्ष कैसे कम हो सकता है?
प्र.8 संघर्ष टालना किन परिस्थितियों में सफल हैं?
प्र.9 'मतभेदों में तेजी लाना' क्या इससे संघर्ष खत्म हो सकता है?

5.5 कार्य दबाव का अर्थ एवं प्रकार

कार्य दबाव का अर्थ

आज के प्रतियोगितावादी व तेज गति से चलते युग में प्रत्येक व्यक्ति दबाव में है। दबाव का अर्थ उस शारीरिक तनाव से है जो एक व्यक्ति वातावरणीय घटकों के संपर्क में आने के फलस्वरुप महसूस करता है। हम जिस वातावरण में रहते हैं उसमें अनेक ऐसे घटक

हैं जो हमें प्रभावित करते हैं। जैसे –परीक्षा नज़दीक आती देख विद्यार्थी दबाव में आ जाते हैं, क्योंकि अब उन्हें अधिक पढ़ना होगा। इसी प्रकार तकनीकी परिवर्तनों से कर्मचारियों पर कुछ नया सीखने का दबाव आ जाता है। एक अन्य उदाहरण के अनुसार, जब–जब हमारी आवश्यकताओं हमारे पास उपलब्ध संसाधनों से अधिक होती है तब–तब हम दबाव महसूस करते हैं।

दबाव के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जरुरी नही कि यह हानिकारक ही हो। इसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव होते हैं। उदाहरण के लिए, परीक्षा के समय विद्यार्थी दबाव में आने के कारण ही अधिक मेहनत करते हैं और अच्छे अंकों से पास होते हैं। यह दबाव का सकारात्मक प्रभाव है। दूसरी ओर, यदि कम्पनी की ट्रांस्फर नीति के अंतर्गत किसी कर्मचारी को घर से दूर भेज दिया जाता है तो वह दबाव में आ जाएगा और इससे उसे भारी मानसिक पीड़ा होगी। यह दबाव का नकारात्मक प्रभाव है।

टूल बाक्स – 6
दबाव शारीरिक तनाव जो एक व्यक्ति वातावरणीय घटकों के संपर्क में आने के फलस्वरुप महसूस करता है।

आज अनेक शोधकर्ताओं से सिद्ध हो चुका है कि दबाव की स्थिति में कर्मचारियों की कार्यक्षमता में भारी कमी आ जाती है। यही कारण है कि कोई भी कंपनी कर्मचारियों को दबाव की स्थिति में सहन नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में कंपनी की लागतें बढ़ती हैं। अतः हर हाल में कंपनी कर्मचारियों को दबाव की स्थिति से बाहर निकालना चाहती है। और ऐसा दबाव प्रबंध से संभव है।

दबाव की विशेषताएं

दबाव की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) **यह वातावरणीय घटकों का परिणाम है:** दबाव वातावरणीय घटकों का परिणाम होता है। वातावरण का अर्थ उन घटकों के योग से है जो हमारे चारों ओर होते हैं और हमें प्रभावित करते हैं। जैसे –जॉब, आर्थिक स्थिति, तकनीकी परिवर्तन, सामाजिक सहायता, संगठनात्मक नीतियां, आदि। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति अधिक

महत्वपूर्ण पद पर काम कर रहा है तो हमेशा दबाव में रहेगा। इसी प्रकार एक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो वह भी हमेशा दबाव में रहेगा।

(ii) **यह सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकता हैः** दबाव का प्रभाव सकारात्मक अथवा नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। सकरारत्मक प्रभाव के रुप में दबाव हमें कुछ करने के लिए मजबूर करता हैं इसके फलस्वरुप हमारी कार्यकुशलता बढ़ जाती है और हम तरक्की करते हैं। दूसरी ओर, इसके नकारात्मक प्रभाव के रुप में, इसके फलस्वरुप उदासी, गुस्सा, अविश्वास आदि की संभावना पनपती है।

(iii) **यह अस्थाई अथवा दीर्घकालीन हो सकता है** : दबाव की प्रकृति अस्थाई अथवा दीर्घकालीन होने की है। जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियां आती हैं जबकि दबाव से थोड़े ही समय में छुटकारा मिल जाता है। इसके विपरीत, कुछ परिस्थितियों में यह लम्बे समय तक चलता है और अनेक बीमारियां पैदा करता है।

(iv) **यह संगठनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण लागत के रुप में होता हैः** दबाव और कार्यकुशलता में विपरीत संबंध है। अर्थात यदि कर्मचारी दबाव में होंगे तो उनकी कार्यकुशलता कम होगी और इसके विपरीत भी। अतः दबाव से कार्यकुशलता कम होती है, फलस्वरुप लागतें बढ़ती हैं। दबाव किसी संगठन की लागतों का एक मुख्य अंग होता है। जो संगठन अपनी लागतों को नियंत्रित करना चाहते है, उसे अन्य लागतों (जैसे– माल लागत, श्रम लागत, आदि) से पहले दबाव लागत पर नियंत्रण करना होगा। इसलिए यह कहना बिल्कुल ठीक है कि दबाव संगठनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण लागत के रुप में होता है।

(v) **इसके फलस्वरुप अनेक तरह के विचलन आ सकते हैंः** दबाव के कारण एक व्यक्ति में अनेक विचलन अथवा अंतर देखे जा सकते हैं जैसे– शारीरिक, मनावैज्ञीनिक, तथा व्यवहारात्मक। शारीरिक विचलन के अंतर्गत उच्च रक्तचाप, दिल की बिमारियों आदि को सम्मिलित किया जाता है। मनोवैज्ञानिक विचलन में मुख्यतः डिप्रेशन आता है। इसी प्रकार व्यवहारात्मक विचलन में अनुपस्थिति व उत्तेजना को सम्मिलित किया जाता है।

(vi) **यह व्यक्ति विशेष से संबंधित हैः** दबाव का प्रत्येक व्यक्ति पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। कुछ व्यक्तियों की सहन–शक्ति अधिक होती है और वे दबाव का डटकर

मुकाबला करने लगते हैं। इसके विपरीत, कुछ लोग उतने ही दबाव से घबरा जाते हैं। उनमें थोड़ी–सी भी सहन–शक्ति नहीं होती। वे दैनिक समस्याओं से संबंधित दबाव को देखकर ही कांपने लगते हैं। अतः एक जैसा दबाव अलग–अलग लोगों को निम्न प्रकार से प्रभावित करता है।

दबाव के प्रकार

दबाव मुख्यतः दो प्रकार का होता हैः

(1) **यूस्ट्रेस** : यह एक ऐसा दबाव है जिसका होना जरुरी है। इसके सकारात्मक प्रभाव होते हैं। जैसे– परीक्षा के समय का दबाव। यदि यह दबाव विद्यार्थियों पर न हो तो वे ठीक से पढ़ाई नहीं करेंगे। यह दबाव एनर्जी पैदा करता है। परिणामतः कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

(2) **डिस्ट्रेसः** यह एक ऐसा दबाव है जो बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है। इसके नकारात्मक परिणाम होते हैं। उदाहरण के लिए, नौकरी की असुरक्षा। इससे तनाव पैदा होता है। यदि इसे समय पर नियंत्रित न किया जाए तो यह शत्रु का रुप धारण कर लेता है। इससे उच्च रक्तचाप व दिल की बिमारी जैसे भयंकर रोग पैदा होते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.13 यूस्ट्रेस से क्या अभिप्राय है?
प्र.14 क्या डिस्ट्रेस हानिकारक है?
प्र.15 कितना दबाव उचित है?

5.6 कार्य दबाव के कारण एवं प्रबंधन

दबाव के कारण

अब प्रश्न यह उठता है कि कोई व्यक्ति दबाव में क्यों आता है? दबाव के लिए उत्तरदायी कारणों को स्ट्रेसरस कहते है। इनको निम्नलिखित चार श्रेणियों में विभक्त किया जाता हैः

(i) संगठनात्मक स्ट्रेसरस

(ii) व्यक्तिगत स्ट्रेसरस

(iii) समूह स्ट्रेसरस

(iv) वातावरणीय स्ट्रेसरस

(i) **संगठनात्मक स्ट्रेसरस**: एक व्यक्ति पर दबाव डालने वाले संगठन से संबंधित मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(क) **संगठनात्मक नीतियां**: कम्पनी द्वारा निर्णयों में कर्मचारियों का मार्ग–दर्शन करने के लिए नीतियां निर्धारित की जाती है। कोई विशेष नीति किसी विशेष कर्मचारी की अपेक्षा के विपरीत हो सकती है। यदि ऐसा है तो नीति उस कर्मचारी पर दबाव बढ़ाएगी। उदाहरण के लिए, कम्पनी द्वारा यह सेविवर्गीय नीति बनाई गई कि कर्मचारियों की तरक्की का आधार उसकी आयु होगा। माना, मि. 'ए' का मानना है कि तरक्की का आधार कार्यकुशलता होना चाहिए न कि आयु। क्योंकि वह बहुत कार्यकुशल कर्मचारी है। उसकी अपेक्षा के विपरीत बनी हुई नीति उस पर दबाव बनाएगी। इसी प्रकार ऐसी स्थानान्तरण नीति जिसमें जल्दी–जल्दी स्थानान्तरण की बात कही गई हो, भी कर्मचारियों पर दबाव डालती है।

(ख) **संगठनात्मक प्रक्रियाएं**: प्रत्येक संगठन में अनेक प्रक्रियाएं काम करती हैं। जैसे – संदेशवाहन प्रक्रिया, निर्णयन प्रक्रिया, नियुक्तिकरण प्रक्रिया, नियंत्रण प्रक्रिया, आदि। यदि ये प्रक्रियाएं अस्पष्ट, लम्बी व कठिन हैं तो कर्मचारियों पर दबाव बढेगा। उदाहरण के लिए, यदि प्रत्येक संदेशवाहन लिखित में किया जाना हो तो कोई भी कर्मचारी पसंद नहीं करेगा और वे दबाव में रहेंगे। इसी प्रकार यदि सूचनाएं एकत्रित करने की प्रक्रिया स्पष्ट नहीं है तो निर्णयन में कठिनाई आएगी और कर्मचारी दबाव में रहेंगे। परिणामतः उनकी कार्यकुशलता में कमी आएगी।

(ग) **संगठनात्मक ढांचा**: संगठन ढांचा एक संगठन में काम करने वाले लोगों को विभिन्न स्तरों (जैसे– उच्च स्तर, मध्यम स्तर, निम्न स्तर, आदि) में विभक्त करता है। इसके अंतर्गत काम का बंटवारा किया जाता है। पूरे संगठन को सुचारु रुप से चलाने के लिए नियम बनाए जाते है। अधिकार एवं उत्तरदायित्वों का निर्धारण किया जाता है।

यदि संगठन ढांचे में प्रबंध के स्तर आवश्यकता से अधिक अथवा कम बनाए गए हैं तो इससे कर्मचारी परेशान रहते हैं और उन पर दबाव बढ़ता है। काम के बंटवारे में भेदभाव भी कर्मचारियों पर दबाव का कारण बन सकता है। बहुत अधिक अथवा बहुत कम काम सौंपना, दोनों ही स्थितियां कर्मचारी पर दबाव बढ़ाती हैं। यदि संगठन को चलाने के लिए कठोर नियम बनाए गए हैं तब कर्मचारियों पर दबाव बढ़ता है। इसी प्रकार अधिकार एवं उत्तरदायित्व में असमानता से भी कर्मचारी दबाव में आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त संगठन ढांचे से संबंधित और भी अनेक कारण हो सकते हैं जो कर्मचारियों पर दबाव बढ़ाते हैं।

(ii) **व्यक्तिगत स्ट्रेसरसः** यह दबाव का ऐसा कारण है जिसका संबंध व्यक्ति विशेष से होता है। इसमें मुख्यतः निम्न को सम्मिलित किया जाता हैः

(क) **जॉब** : कोई भी जॉब ऐसी नहीं है जो दबावरहित हो। हां, ऐसा हो सकता है कि एक जॉब में दबाव अधिक हो और दूसरी में कम। प्रायः देखा जाता है कि जॉब पूरी तरह से हमारे नियंत्रण में होती है वहां दबाव कम होता है और इसके विपरीत। उदाहरण के लिए, एक सर्जन व एक पुलिस अधिकारी की जॉब अधिक दबाव वाली होती है।

(ख) **अनिश्चितताः** क्योंकि भविष्य अनिश्चित है इसलिए हर व्यक्ति का जीवन अनिश्चितताओं से भरा रहता है। फिर भी कुछ लोग जो आर्थिक व अन्य दृष्टि से मजबूत होते हैं भावी अनिश्चितताओं की परवाह नही करते। ये लोग किसी भी विपरीत परिस्थिति का डटकर मुकाबला करने की क्षमता रखते हैं। परिणामतः दबाव रहित रहते हैं इसके विपरीत, जो लोग भावी अनिश्चितताओं से डरते हैं वे शीघ ही दबाव में आ जाते हैं। ये लोग कभी नौकरी की असुरक्षा को लेकर दबाव में आ जाते हैं तो कभी किसी अन्य कारण से। इन्हें जल्दी–जल्दी हो रहे तकनीकी परिवर्तन भी सताते रहते हैं क्योंकि इन परिवर्तनों का सामना करने के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है।

(ग) **जीवन–परिवर्तनः** प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में प्रायः दो तरह के परिवर्तन होते हैं। प्रथम, वे जो धीमी गति से होते हैं (जैसे– आयु का बढ़ना) तथा द्वितीय,

वे जो तेज गति से अथवा अचानक होते है। (जैसे– शादी होना, किसी निकटस्थ की मृत्यु होना) जो परिवर्तन धीमी गति से होते हैं, वे कम दबाव डालते है। इसके विपरीत, तेजी से अथवा अचानक होने वाले परिवर्तन अधिक दबाव डालते हैं।

(घ) **व्यक्तिगत विशेषताएंः** प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण होते हैं। ये गुण ही इस बात का निर्धारण करते हैं कि कोई व्यक्ति कितनी शीघ्रता से अथवा कितनी देरी से दबाव में आता है।

(iii) **वातावरणीय स्ट्रेसरस**

जिस वातावरण में कर्मचारी काम करते हैं यदि वहां की दशाएं ठीक नहीं हैं तो कर्मचारियों पर दबाव बढ़ता है। जैसे– कम रोशनी, अधिक शोर, धूल का होना, असुविधाजनक तापमान, आदि ऐसे वातावरणीय घटक हैं जो कर्मचारियों पर दबाव बढ़ाने में अहम् भूमिका अदा करते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विपरीत काम की दशाएं कार्यकुशलता में कमी लाती है और दबाव बढ़ता है।

दबाव प्रबंधन का अर्थ

दबाव प्रबंधन का अभिप्रायः उस प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से दबाव को नियंत्रित किया जा सकता है। ध्यान रहे कि दबाव प्रबंध में दबाव को बिल्कुल समाप्त करने की बात नहीं कही गई है बल्कि इसे नियंत्रित करने की बात कही गई है। इसका कारण यह है कि एक सीमा तक दबाव से कार्यकुशलता बढ़ती है। ऐसा कहा जाता है कि ''बिना दबाव के कोई जीवन नहीं है।''

टूल बाक्स – 7
दबाव प्रबंध इसका अभिप्राय उस पद्धति से है जो दबाव पर नियंत्रण करती है और उस हानि से छुटकारा दिलाती है जो इसके कारण हो सकती है।

अपनी प्रगति जांचिए
प्र.10 क्या संगठन में दबाव कार्य की वजह से ही होता है?
प्र.11 क्या दबाव का समाधान है?
प्र.12 दबाव से संगठन को क्या हानि हो सकती है?

कार्यकुशलता के स्तर एंव दबाव में संबंधं

कार्यकुशलता के स्तर एवं दबाव में सबंध के बारे में प्रबंध विशेषज्ञों में मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि इन दोनों में गहरा संबंध है जबकि कुछ इनके संबंध को नकारते हैं।

(1) **न्यूनतम दबाव** : जब दबाव शून्य अथवा न्यूनतम होता है तो व्यक्ति में एनर्जी की कमी होती है। वह उससे काम नहीं करता। परिणामतः कार्यकुशलता भी न्यूनतम स्तर पर आ जाती है।

(2) **मध्यम दबावः** जैसे–जैसे दबाव न्यूनतम स्तर से मध्यम स्तर की ओर चलता है, वैसे–वैसे कार्यकुशलता का स्तर भी ऊपर की ओर चलने लगता है। जब दबाव मध्यम स्तर पर होता है तो कार्यकुशलता शिखर पर होती है। दबाव के इस स्तर पर व्यक्ति में पूरी एनर्जी आ जाती है। वह दिल से काम करने लगता है। उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग होने लगता है। परिणामतः कार्यकुशलता भी अधिकतम हो जाती है।

(3) **अधिकतम दबाव** : जैसे–जैसे दबाव मध्यम स्तर से अधिकतम स्तर की ओर चलता है वैसे – वैसे कार्यकुशलता का स्तर गिरने लगता है। एक ऐसी स्थिति आती है कि दबाव का स्तर अधिकतम होता है और कार्यकुशलता का न्यूनतम। इसका कारण यह है कि व्यक्ति एक सीमा से अधिक दबाव सहन नहीं कर सकता। अधिक दबाव से उसकी एनर्जी की कमी होने लगती है। उसका काम में मन नहीं लगता। वह निर्णय लेने में स्वयं को असहाय महसूस करता है। परिणामतः उसकी कार्यकुशलता घटते–घटते शून्य तक आ जाती है। इस स्थिति में वह काम से अनुपस्थित रहने लगता है। यहां तक कि वह जॉब छोड़ने को भी तैयार हो जाता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कार्यकुशलता को बनाए रखने के लिए कुछ दबाव का होना जरुरी है। लेकिन दबाव का होना एक सीमा तक ही उपयोगी है। इस सीमा के बाद इससे हानि होने लगती है।

कार्य दबाव का प्रबंधन

अब प्रश्न यह उठता है कि दबाव को समाप्त अथवा कैसे नियंत्रित किया जाए? इसका उत्तर है–दबाव को 'दबाव प्रबंध' द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। पुनः प्रश्न यह उठता है कि दबाव प्रबंध कैसे किया जाए? इसका उत्तर है– दबाव प्रबंध निम्नलिखित पद्धतियों से संभव है, ये हैं :

(i) व्यक्ति से संबंधित पद्धतियां

(ii) संगठन से संबंधित पद्धतियां

अब हम दबाव प्रबंध की इन दोनों तरह की पद्धतियों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

(i) **व्यक्ति से संबंधित पद्धतियां**

सर्वप्रथम हमें यह समझ लेना चाहिए कि दबाव से छुटकारा पाना संभव है। यदि एक व्यक्ति चाहे तो दबावपूर्ण परिस्थिति को टाल सकता है, उसे परिवर्तित कर सकता है अथवा उसका सामना करने की हिम्मत जुटा सकता है। व्यक्तिगत स्तर पर दबाव से छुटकारा पाने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जा सकते हैं:

(क) **ध्यानः** ध्यान, दबाव से बाहर आने का महत्वपूर्ण माध्यम है। ध्यान का अभिप्राय मस्तिष्क को, व्याकुल करने वाले विचारों से दूर, एक ओर केन्द्रित करने से है। ध्यान के लिए आंखे बन्द करके शान्त स्थान पर बैठा जाता है। एक मंत्र का बार–बार उच्चारण किया जाता है। ऐसा करने से मस्तिष्क में आने वाले बेकार के विचार दूर हो जाते हैं और शारीरिक व मानसिक शांति प्राप्त होती है। जब शारीरिक व मानसिक शांति प्राप्त होती है तो दबाव दूर हो जाता है।

(ख) **योगः** पिछले कुछ वर्षों से योग का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। यह दबाव निवारण की एक अचूक दवा है। योग के अंतर्गत कुछ आसन किए जाते हैं। इनको करने से हमारे हड्डियों के ढांचे और मांसपेशियों में लचीलापन आता है। फलस्वरुप, हमारा नाड़ी तंत्र उत्तेजित होने लगता है तथा पूरे शरीर में

रक्त की संतुलित पूर्ती होने लगती है। इस प्रकार हमें शारीरिक व मानसिक शांति प्राप्त होती है। और ऐसी स्थिति में दबाव को दूर होना निश्चित है।

(ग) **व्यायामः** ध्यान व योग के अतिरिक्त हल्के शारीरिक व्यायामों से भी दबाव कम होता है। हल्के व्यायामों के अंतर्गत सैर, धीरे–धीरे चलना, कूदना, साइकिल चलाना, तैरना, आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(घ) **संतुलित आहारः** संतुलित आहार हमें शरीरिक व मानसिक शक्ति प्रदान करता है। फलस्वरुप हम दबाव का अधिक मजबूती से सामना कर सकते हैं। हमें ऐसा आहार लेना चाहिए जिसमें फल, सब्जी, दालें, रोटी, दूध आदि सभी उचित मात्रा में हों। जरुरत से अधिक व जरुरत के कम आहार लेना, दोनों ही हानिकारक है। अतः हम संतुलित आहार लेकर दबाव से बच सकते हैं।

(ङ) **समय प्रबंधः** प्रायः हम देखते हैं कि वही लोग दबाव में रहते हें जो समय पर अपना काम पूरा नहीं करते। इसका कारण है 'समय प्रबंध' न करना। अतः समय प्रबंध करके हम दबाव से बच सकते हैं। समय प्रबंध के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिएः

- अगले दिन क्या करना है, इसका निर्धारण पूर्व संध्या को कर लेना चाहिए।
- प्रतिदिन की प्राथमिकताओं का निर्धारण कर लेना चाहिए।
- एक समय पर एक ही काम करना चाहिए।
- काम मिलते ही, शीघ्र खत्म करने की कोशिश करनी चाहिए।

(च) **पर्याप्त निंद्राः** एक व्यक्ति के लिए जितना जरुरी खाना–पीना व अन्य काम हैं उतना ही जरुरी नींद भी है। पर्याप्त नींद से व्यक्ति तरोताजा रहता है और वह दबाव महसूस नहीं करता।

(छ) **सीमाओं का ध्यान रखनाः** कुछ लोग इसलिए भी दबाव में रहते हैं कि उनसे सभी लोग खुश नहीं हैं। हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह किसी का बुरा और अपनी ओर से जितना बढ़िया कर सकता है करे। फिर भी कोई नाराज रहे तो परवाह नहीं करनी चाहिए। सभी को खुश न कर पाना हर व्यक्ति की सीमा होती है। अतः यह बात हमारी समझ में आ जाए तो हम दबाव को कम कर सकते हैं।

(ज) **सामाजिक मददः** प्रायः देखा जाता है कि कोई व्यक्ति हमेशा खुश नहीं रह सकता। जीवन में दु:ख आते ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का दबाव में आना स्वाभाविक है। इस दबाव से सामाजिक मदद के द्वारा छुटकारा पाया जा सकता है। सामाजिक मदद का अर्थ परिवार, पड़ौसी, रिश्तेदार, साथी कर्मचारी, आदि की ओर से प्राप्त मदद से है। प्रत्येक व्यक्ति को इन सभी की जरुरत होती है ताकि वह अपने दु:ख के पल इनके साथ बांट सके। यदि उसे यह मदद प्राप्त हो जाए तो वह निश्चित ही दबाव से बाहर आ जाएगा। इसीलिए कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज के विभिन्न अंगों से संबंध बनाकर रखने चाहिए ताकि समय आने पर वे काम आ सके। इसके अतिरिक्त भगवान की शरण में जाने से भी व्यक्ति को मानसिक मजबूती प्राप्त होती है और उसे दबाव से छुटकारा मिलता है।

(झ) **वास्तविक लक्ष्यः** प्रायः देखा जाता है कि लोग इतने ऊँचे लक्ष्य निर्धारित कर लेते है जिन्हें प्राप्त करना असंभव होता है। जब ये लक्ष्य प्राप्त नहीं होते तो वे दबाव में आ जाते है। अतः हमे ऐसे लक्ष्य निर्धारित नहीं करने चाहिए जिन्हे प्राप्त करना संभव न हो। यदि गलती से ऊँचे लक्ष्य निर्धारित हो जाते हैं तो उन्हें समय पर संशोधित कर लेना चाहिए। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि प्राप्त करने योग्य लक्ष्य निर्धारित करके हम दबाव से छुटकारा पर सकते हैं।

(ण) **मालिशः** शरीर की मालिश करवाने से मांसपेशियों को आराम मिलता है। नींद अच्छी आती है। परिणामतः दबाव कम होता है।

(ii) **संगठन से संबंधित पद्धतियां**

अनेक ऐसे संगठनात्मक तत्व है जिनके कारण कर्मचारी दबाव में आ जाते हैं इन तत्वों में नीतियां, नियम, प्रक्रियाएं, संगठन ढांचा, अधिकार, उत्तरदायित्व, आदि प्रमुख हैं। जब ये सभी तत्व कर्मचारी की इच्छा के विपरीत होते हैं तो वे दबाव में आ जाते हैं। अतः व्यक्तिगत स्तर के साथ – साथ संगठन स्तर भी कर्मचारियों को दबाव से बाहर निकालने के प्रयास किए जाने चाहिएं। संगठन स्तर पर किए जाने वाले मुख्य प्रयास निम्नलिखित हैं:

(क) **कार्य सम्पन्नताः** कार्य सम्पन्नता का अर्थ कार्य के महत्व को बढ़ाने से है। अर्थात, ऐसी जॉब जिसमें:

- अधिकार, उत्तरदायित्व एवं चुनौतियों का क्षेत्र विस्तृत हो,
- उच्च–स्तरीय ज्ञान एवं अनुभव की जरुरत हो,
- व्यक्तिगत विकास के अवसर उपलब्ध हों,
- निर्णय लेने का स्वतन्त्रता हो।

कर्मचारी इस तरह की जॉब प्राप्त करके गर्व महसूस करते है और उनकी काम में रुचि बढ़ती है। इस प्रकार कार्य सम्पन्नता से कर्मचारियों के दबाव को कम किया जा सकत है।

(ख) **प्रशिक्षण देनाः** प्रत्येक कर्मचारी चाहता है कि वह अपने काम में निपुण हो। कर्मचारियों की इस भावना का ध्यान रखते हुए उनके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। फलस्वरुप, वे अपने काम में निपुणता प्राप्त कर लेंगे और उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होगी। उनकी संगठन में पहचान बनेगी। इस प्रकार से वे खुश रहेंगे और दबाव उनके नज़दीक नहीं आएगा।

(ग) **प्रबंध में भागीदारीः** प्रायः देखा जाता है कि कर्मचारियों को यह स्पष्ट नहीं होता कि संगठन में उनकी क्या भूमिका है। फलस्वरुप, वे दबाव में रहते हैं। इसका कारण है उनकी प्रबंध अथवा नियमों में भागीदारी बना लिया जाए तो इससे तीन लाभ प्राप्त होंगे:

(क) प्रथम, कर्मचारी गर्व महसूस करेंगे।

(ख) द्वितीय, उन्हे संगठन में अपनी भूमिका स्पष्ट हो जाएगी।

(ग) तृतिय, वे निर्णयों को दिल से लागू करेंगे और उनका विरोध नहीं करेंगे।

इस प्रकार निर्णयों में उनकी भागीदारी से उन्हें स्पष्ट हो जाएगा कि संगठन को उनसे क्या अपेक्षाएं हैं। उनकी कार्यकुशलता बढेगी। वे संतुष्ट रहेंगे और दबाव का डटकर मुकाबला करेंगें।

(घ) **स्वतंत्र संदेशवाहनः** स्वतंत्र संदेशवाहन दबाव से छुटकारा पाने का महत्वपूर्ण माध्यम है। स्वतंत्र संदेशवाहन के अंतर्गत सभी कर्मचारी खुले दिमाग से दूसरों की बात सुनते भी हैं और अपनी बात कहते भी है। अतः आदेशों, सुझावों, शिकायतों, आदि

का आदान–प्रदान स्वतंत्रता पूर्वक होता है। ऐसी स्थिति में सभी अस्पष्टताएं दूर हो जाती हैं और कर्मचारियों को दबाव से राहत मिलती है।

(ङ) **सही चयनः** अकुशल चयन प्रक्रिया से दबाव बढ़ता है। यदि कर्मचारी का उनकी योग्यता एवं रुचि के अनुसार काम नहीं दिया जाएगा तो उनकी कार्यकुशलता कम हो जाएगी। वे दबाव महसूस करेंगें अतः कर्मचारियों का चयन करते समय जॉब की आवश्यकताओं को ध्यान रखना चाहिए। ऐसे में उनकी प्रत्येक जॉब पर योग्य व्यक्ति ही नियुक्त करना चाहिए। ऐसा करने से कर्मचारी जब काम पर आएंगे तो संतुष्ट रहेंगे न कि दबाव में।

(च) **प्रभावी पारितोषिक पद्धतिः** यदि कर्मचारियों के काम को पहचाना जाए और उन्हें उचित पारितोषिक दिया जाए तो उनको दबाव से राहत मिलेगी। अतः जो कर्मचारी बढ़िया काम करते हैं, उन्हें पारितोषिक अवश्य मिलना चाहिए। ऐसा करने से उनकी कार्यकुशलता बढ़ेगी और वे दबाव मुक्त रहेंगे।

(छ) **कैरियर बढ़ोतरी अवसरः** जब कर्मचारियों को लगता है कि उन्हें कैरियर बढ़ोतरी के अवसर उपलब्ध नहीं हो रहे हैं तो वे दबाव में आ जाते हैं। वे महसूस करते हैं कि उनकी क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। वे अपनी जॉब के प्रति उदासीन होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें कैरियर बढ़ोतरी के अवसर प्रदान किए जाएं तो वे दबाव से बाहर आ सकते हैं। हर कर्मचारी चाहता है कि उनकी पदोन्नति के लिए अधिक कार्यकुशल होना जरुरी है। एक कर्मचारी कार्यकुशल तभी बन सकता है जबकि उसे प्रशिक्षण एवं विकास की सुविधाएं उपलब्ध हों। अतः ये सुविधाएं उपलब्ध कराकर कर्मचारियों की पदोन्नति का रास्ता साफ किया जा सकता है। पदोन्नति के अवसर प्राप्त होते ही कर्मचारी खुश हो जाएंगे और स्वयं को दबाव मुक्त महसूस करेंगे।

(ज) **कर्मचारी भलाई स्कीमः** अनेक ऐसी कर्मचारी भलाई स्कीमें है जिन्हें लागू करके उनके दबाव को कम किया जा सकता है। इन स्कीमों का उद्देश्य कर्मचारियों की गंदी आदतें छुड़वाना है। उदाहरण के लिए, शराब, धूम्रपान, बेईमानी, कामचोरी, आदि मुद्दों पर विशेषज्ञों के लैक्चर करवाए जा सकते हैं। विशेषज्ञों की मदद से उन्हें उनके अधिकार एवं कर्तव्यों का पाठ पढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कम्पनी की

ओर से अग्रिम शिक्षा, सेहत व दवाइयों आदि की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसा करने से कर्मचारी को लगेगा कि कम्पनी उनमें रुचि ले रही है। इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ेगा। वे अधिक कार्यकुशल होंगे और दबावमुक्त रहेंगे।

(झ) **उपयुक्त नीतियां**ः संगठन को सुचारु रुप से चलाने के लिए नितियों का निर्धारण किया जाता है। यदि नीतियां कर्मचारियों की अपेक्षाओं के विपरीत हैं तो वे दबाव में आ जाते हैं। इस तरह के दबाव को समाप्त करने के लिए नीतियों का उपयुक्त होना जरुरी है। ऐसी नीतियां बनाई जाएं जो दोनों पक्षकारों को मान्य हो। यदि मजबूरी में कोई विपरीत नीति बनानी भी पड़े तो ऐसा कर्मचारियों को विश्वास में लेकर करना चाहिए। इससे वे दबाव में नहीं आएंगे।

(ण) **सरल प्रक्रियाएंः** प्रत्येक संगठन में अनेक प्रक्रियाएं (जैसे– निर्णयन, संदेशवाहन, नियंत्रण, आदि) काम करती है। यदि ये प्रक्रियाएं अस्पष्ट व कठिन हैं तो कोई भी काम समय पर नहीं हो सकेगा और कर्मचारी दबाव में आ जाएंगे। अतः संगठन में लागू सभी प्रक्रियाएं स्पष्ट व सरल होनी चाहिएं। ऐसा न करने से हर व्यक्ति उनको समझ सकेगा और उनका पालन करेगा। परिणामतः उनकी कार्यकुशलता बढ़ेगी और वे दबाव मुक्त होंगे।

5.7 सारांश

विवाद विद्यमान परिस्थितियों की समीक्षा हेतु तथा सम्बद्धतः पक्षकारों को स्वीकार्य श्रेंष्ठ विकल्पों के सृजन हेतु अवसर की व्यवस्था भी करते हैं। यद्यपि एक विवाद किसी व्यक्ति की भावनात्मक प्रसन्नता को अवरुद्ध कर सकता है फिर भी यह व्यक्तिगत विकास में एक धनात्मक घटक भी हो सकता है। यह एक चुनौतीभरी भावना पैदा कर सकता है। विवाद तथा समस्याएं प्रगति का मूल्य होते हैं। इसलिए विवाद अनिवार्यतः हतोत्साहक नही होते वरन उनके प्रति रूझान ऐसा हो सकता है यदि उचित रुप से संभाला जाए तो वे संगठन को उसके उद्देश्यों को पाने में सहायतार्थ सृजनात्मक समस्या समाधान परिस्थितियां प्रदान कर सकते हैं। परम्परागत प्रबन्ध सिद्धांत विवादों को आंतरिक तौर पर बुरा तथा नुकसानदेह मानते है तथा उनको दबाने की सिफारशें करते हैं लेकिन आज यह विचार ठीक नहीं माना जाता। विवाद संगठनों में अपिरहार्य है जो भी श्रमिकों के अलग–अलग दृष्टिकोण, जीवन मूल्य तथा रुझाान होते हैं। यही नहीं, एक विवाद कुल मिलाकर बुरा नहीं होता।

उसमें सृजन के तत्व भी होते हैं। अतः जोर इस बात पर दिया जाना चाहिए कि नुकसान भरा मानकर लड़ने के स्थान पर सुधार हेतु उनका उपयोग किया जाए। परस्पर विरोधी पक्षकारों को हार–जीत की लड़ाई के स्थान पर समस्या समाधान के रुप में विवाद को देखना चाहिए। हार–जीत की प्रवृत्ति अराजकता पैदा करती है। वह रचनात्मक समाधानों की सभावना ही मिटा देती है। आज के प्रतियोगितावादी व तेज गति से चलते युग में प्रत्येक व्यक्ति दबाव में है। दबाव का अर्थ उस शारीरिक तनाव से है जो एक व्यक्ति वातावरणीय घटकों के संपर्क में आने के फलस्वरुप महसूस करता है। हम जिस वातावरण में रहते हैं उसमें अनेक ऐसे घटक हैं जो हमें प्रभावित करते हैं। जैसे –परीक्षा नज़दीक आती देख विद्यार्थी दबाव में आ जाते हैं, क्योंकि अब उन्हें अधिक पढ़ना होगा। इसी प्रकार तकनीकी परिवर्तनों से कर्मचारियों पर कुछ नया सीखने का दबाव आ जाता है। एक अन्य उदाहरण के अनुसार, जब–जब हमारी आवश्यकताओं हमारे पास उपलब्ध संसाधनों से अधिक होती है तब–तब हम दबाव महसूस करते हैं।

दबाव के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जरुरी नही कि यह हानिकारक ही हो। इसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव होते हैं।

5.8 बोध प्रश्न

1. संघर्ष क्या है? भूमिका सघर्ष के क्या कारण हैं? भूमिका संघर्ष को टालने की तकनीकों की व्याख्या कीजिए।
2. संघर्ष के स्तर क्या हैं? इन स्तरों पर संघर्ष के क्या कारण हैं
3. संघर्ष के प्रबन्ध की विकल्प विचारधारा के विश्लेषण दीजिए।
4. कुछ व्यक्ति कहते हैं कि विवाद एकदम बुरे होते हैं, जबकि कुछ अन्य का विश्वास है कि संगठनों में किसी हद तक विवाद वांछनीय है। आप किस मत का समर्थन करते हैं तथा क्यों?
5. विवाद से आप क्या समझते हैं? एक संगठन में विभिन्न प्रकार के विवादों के कारणों को समझाइए।
6. भूमिका संघर्ष से आप क्या समझते हैं? उदाहरण दीजिए।
7. परिवर्तन–परिवर्तन संघर्ष का कोई उदाहरण दीजिए।
8. अंतवैयक्तिक संघर्ष के क्या उच्चस्तरीय घटक हैं?

5.9 संदर्भ उपयोगी ग्रंथ

- कुमार, आर. 2012, संगठनात्मक व्यवहार, प्रथम संस्करण, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- Robbins, P. Stephen, Judg,e A. Timothy, Sanghi, Seema, 2010, Essentials of Organizational Behavior, 10th Edition, Pearson Publication, Delhi.
- Luthans, Fred, 2011, Organizational Behavior: An Evidence-Based Approach, 12th Edition, Tata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.
- Mcshane, L.S., Von, Glinow A. M., Sharma R. R, 2010, Organisational Behaviour, 4th EditionTata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.